चन्द्रवती ऋषभसैन जैन

बस और क्या कहूँ ?

शैशव-काल से ही मैं नही जानती कैसे मुझ मे एक संस्कार है, जीवन को आँख खोल कर देखने का। देखते-देखते जब भीतर भारी-सा एक सग्रह हो चला तो घर-गृहस्थी के सामान की तरह, उसे ठिकाने लगाने, व्यवस्थित करने की जरूरत पड़ी। मेरी कलम का यह कार्य उसी व्यवस्था का रूप हैं और सक्षेप मे मेरे साहित्य का मनोविज्ञान और इतिहास यही है।

इन कहानियों मे कल्पना के करिश्मो का अभाव है। ये सब मेरे या मेरे साथियो के जीवन की घटनाएँ है। इनके पात्र मेरी 'सृष्टि' नहीं है, मेरे 'कामरेड' है। वे मेरे साथ हँसे, खेले और रोये, और मैं उन मे और वे मुझ मे बराबर डूबे रहे। लिखते समय मुझे कभी नही लगा

कि मै लिख रही हूँ। सन्दलसिंह से मैंने बातें कीं, चञ्चल से चुहल और अञ्जनहारी, ललिता एवं झींकती के साथ मै रोई।

मेरे पास साहित्य का 'मीटर' नहीं है। मै इन का साहित्यिक मूल्य जानती भी नही। किसी 'मूल्यवान भेंट' के रूप मे, अभिमान के साथ, इन्हे लिये, इठलाते, मैंने साहित्य-भारती के मन्दिर में प्रवेश भी नहीं किया।

यह प्रेस का युग है। इस मे सब कुछ छप जाता है। जानती हूँ, छपाई और मूल्य का कोई सम्बन्ध नहीं है। विद्वान आलोचक और उन से भी आगे समय, मूल्य का सही निर्धारण करते हैं।

छिपाऊँगी नही, मुझ मे प्रसंशा की चाह है। इन की कोई प्रसंशा करे तो मैं सुखी होऊँ, पर आलोचना के आलोक मे इन की अपात्रता ही सिद्ध हो तो मैं दुख न मानू, क्यों कि जानती हूँ, समय के बहते प्रवाह पर छाप लगाने की क्षमता मुझ मे नही है।

फिर भी यह प्रकाशन एक विडम्बना ही समझी जाए तो इस का भार हिन्दी के यशस्वी पत्रकार, साहित्य-बन्धु श्री ठाकुर श्रीनाथसिंह जी के हिस्से आएगा, जिन्होंने दर्जनों लम्बे-लम्बे प्रशंसा भरे पत्र लिख कर, बराबर मेरी हिम्मत बढ़ाई। हिन्दी के दूसरे अनेक प्रतिष्ठित पत्र सम्पादकों और विशेषतः वैज्ञानिक कहानियों के लेखक

और श्रेष्ठ समालोचक श्री प्रो० ब्रजमोहन गुप्त एम०ए०
का स्नेह-सहारा भी इस मे भागीदार है।

अपने भाई प्रभाकर जी के बारे मे यहाँ कुछ कहने के लिये शब्दों की एक वेगवती धारा भीतर उमड़ी है, पर वे मानवता के मूक साधक है और नही चाहते कि मैं कुछ कहूँ। वे भारतमाता के उस कोटि के पुत्रों मे है, जिन्हे पाकर किसी भी बहिन को फिर कुछ और पाने की इच्छा नही रहती।

बस और क्या कहूँ ?

शान्ति भवन, सहारनपुर
१ अगस्त १९४२

—चन्द्रवती ऋषभसैन जैन

लो, यह लो !

जीवन साथी !

यह सब आप की ही तो विभूति है कि मै आज यहाँ आप को सम्बोधन कर रही हूँ और यह जो आज भारती के मन्दिर मे मुझे भेंट लेकर आने का अवसर मिला है, इस मे भी मेरी प्रतिभा और परिश्रम की अपेक्षा आप की अथक प्रोत्साहन-प्रेरणा की ही झलक है।

मै बडे घर मे जन्मी-पली, बड़े घर मे आई और बडे घरों के वातावरण में मिली-जुली। जानती हूँ, इस क्षेत्र मे नारी का जीवन स्पेशल क्लास के कैदी से आम तौर पर कहीं अच्छा नही है। नारी की स्वतन्त्र सत्ता, मानवी आकांक्षाएँ और सक्षेप मे सम्पूर्ण व्यक्तित्व का अपहरण कर यहाँ उसे सोने का शृङ्गार मिलता है, पर मैंने यहाँ सदा ही अपनी स्वतन्त्र सत्ता अनुभव की है और पाया है कि आप की सारी आकाक्षाएँ, प्रेरणाएँ मेरे व्यक्तित्व के विकास की ओर ही अभिमुख रही है।

हम लड़े भी है, हम मे मतभेद भी रहे है, पर जीवन के सिद्धान्तों के प्रति आप की ईमानदारी सदा अभङ्ग रही है और मेरी दृष्टि मे यह साधारण बात नहीं है—हमारे आज के सामाजिक जीवन मे, जहाँ नारी कर्तव्य मे कुबेर होकर भी अधिकार मे 'इसालवेएट' है, निश्चय ही असाधारण है।

मुझे गर्व है कि आप सही मायने मे एक पुरुष है—सङ्घर्ष और शान्ति दोनों मे आप की दृढ़ता समान रूप से अक्षुण्ण रही है, पर आप के पौरुष का अभिमान साम्राज्यवादी अँग्रेजों की तरह, साथी के स्वतन्त्र व्यक्तित्व का संहार कर कभी शासक होने मे उत्सुक नही हुआ। उसे सदा ही साम्यवादी सोवियट की तरह स्वतन्त्र साथी के सहयोग की प्यास रही।

मुझ मे आज जो कुछ रचनात्मक प्रवृत्ति है, यह उसी का फल है, पर नारी स्वतन्त्र हो कर भी उत्सर्गमयी है तो उस प्रवृत्ति का यह जो कुछ फल है, इसे मैं कहाँ रक्खू ?

लो, यह लो और अपने ही हाथों से, इसे भारत-भारती के मानस-मन्दिर मे भेंट कर दो !

आप इस से प्रसन्न हों और माँ भारती आशीष दे, मैं और यहाँ क्या चाहूँ ?

आप की ही तो—

चन्द्रवती

अन्तर-चित्र

"चाचा जी ! कहानी सुनाओ ।"

पगली सुधा ने 'ऑर्डर' की टोन मे उस दिन कहा और फौरन ही प्रबोध मचल पड़ा—"हाँ, एक मज़ेदार कहानी चाचा जी !"

शारदा और अशोक तो ऐसे मौक़े तलाश किया ही करते है। लाड मे डूब कर, गुनगुनी आवाज़ मे उनका भी हुक्म सादिर होगया—"सुनाओ चॉचॉ जी !" पर मै कहानी-वहानी की मूड मे न था और ये चारों भूत बने लिपट रहे थे। हिन्दुस्तान के चतुर स्यानों की तरह अपना भूत मैने भाभी के सिर उतार दिया। अब हम पाँचों भाभी के सिर थे—"सुनादो एक कहानी।"

धीरे-धीरे बूढी नानी की-सी टोन मे रस ले-लेकर उन्होंने एक कहानी सुनाई। शुरू से लगभग अन्त तक हम जो समझते रहे, अन्त मे वह कुछ और ही हो गया। कहानी के रहस्य-गोपन की यह क्षमता मुझे असाधारण लगी।

"भाभी ! यह कहानी आप ज्यों की त्यों लिख दें तो एक बढ़िया चीज़ बन जाए !" दूसरे दिन उन्होंने एक कहानी लिखी—'मेरी चुटिया उसके हाथ मे थी !' पढ़ कर हम सब हँसे, सब ने उसे पसन्द किया और इस प्रकार हिन्दी के कहानी-क्षेत्र मे श्रीमती चन्द्रवती ऋषभसैन जैन का प्रवेश संस्कार हुआ।

यह घटना हुए वर्षों बीत गये और आज एक श्रेष्ठ कहानी-लेखिका के रूप मे वे हमारे बीच मे हैं। उनकी प्रगति और सफलता का रहस्य इस बात मे छिपा है कि वे जो काम करती है, पूरी शक्ति के साथ और रस लेकर और यह कि उस समय उन्हे यह भूल जाता है कि दुनिया में और भी कोई काम है।

स्कूल मे उन्होने ड्राइङ्ग ली। कुछ साल बीते उनकी रुचि इधर फिर से झुकी। लखनऊ से एक आर्टिस्ट बुलाये गये और वे जुट गईं। आज उनकी विशाल कोठी स्वयं उनके बनाये पेण्टिङ्गस् से सजी है। उन दिनों ऐसा लगता था कि ये जन्म-जन्मान्तर से पेण्टर है और पेण्टिङ्ग इन का शौक़ नही व्यवसाय है। जिस स्त्री के सिर पर एक नये युग

के खासे बडे परिवार की ज़िम्मेदारी हो, वह जब आठ घण्टे रोज़ ब्रुश, प्याली और रङ्गों की दुनिया मे रमी रहे तो और क्या कहा जाए ?

उन की यह धुन कलात्मक या मनोरञ्जन के कार्यों तक ही सीमित नहीं है। यह उन के स्वभाव का अङ्ग है और प्रति दिन की गृह-व्यवस्था मे हम इसे घुला-मिला पाते है। जब वे अपने अतिथि के लिये भोजन की व्यवस्था मे लगी हों तो आप उन से कहानी के विषय मे कुछ भी कहिये, उन्हे बधिर पायेगे। एक धनी परिवार की अध्यक्षा हो कर भी एक दिन मे तीन सेर पिस्ता और अढ़ाई सेर बादाम कतरने का उन का 'रिकार्ड' है और हमारे हलवाई बता सकते है कि इस रिकार्ड को 'बीट डाउन' करना आसान नही है।

लेखन मे भी इन की वही स्थिति है। अब उन का अधिकाश समय अध्ययन और लेखन मे जाता है। मोपासाँ, चेख़व और प्रेमचन्द ये उन के प्रिय कलाकार है और कहानी उन का विषय। अब ब्रुश, प्याली और रङ्ग का स्थान सुन्दर फाउण्टेन पैन और स्वान इक ने ले लिया है और गत्तों के स्थान मे सुन्दर पुस्तके आ गई है।

एक दिन अपने ऑफिस मे वे बैठी थीं। मै आ गया तो बोलीं—"भैया, कहानी लिखने की मूड आ रही है, पर कोई सॉट नही सूझता। बताओ न !"

"सॉट ! जीवन मे सॉट-ही-सॉट बिखरे पड़े है।"

इतने में एक भिखारिन आगई। मैंने कहा—"लो, एक सॉट यह है। अगर आप भिखारियों के जीवन की 'स्टडी' करे तो २५ मास्टर-पीस कहानियाँ लिख सकती हैं। बस उन के मस्तिष्क को मार्ग मिल गया और वह सप्ताह पूरा-का-पूरा भिखारी सप्ताह रहा। हरेक नौकर को आदेश मिला कि जो भिखारी मिले, बुला लाओ। कितने ही भिखारी-भिखारिन आये। भोजन कराया, बाते कीं। वे स्वयं भिखारियों के तमाम अड्डे देख आईं। रात-दिन एक ही चिन्ता, एक ही विचार और एक ही धुन—भिखारी, भिखारिन और भिखारी-जीवन !

इस धुन में एक सृष्टि हुई—'झींकती भिखारिन' ! यह कहानी इतनी सुन्दर, भावमय और कलात्मक है और साथ ही जीवन के सरल स्नेहमय स्पर्श से परिपूर्ण कि साधारण पाठक से लेकर कला-पारखी समालोचक तक उस की वेगमयी रस-धारा मे परिस्रावित हुए बिना नही रह सकता।

लेखिका सम्पूर्ण वातावरण मे अपने पात्रों के साथ रही है—झिलमिल झाँकी के रूप मे नही, साक्षात् कहानी-लेखिका के रूप मे, दृढ़ पहरेदार-सी। कला की कोमल छुई-मुई, कलाकार के इस क्रूर 'पिकेटिङ्ग' का स्वागत नहीं करती। दिव्य-दर्शी रवीन्द्रनाथ ने अपनी

'असम्भव बात' जैसी कहानियों मे इस के अपवाद की सृष्टि की है, जहाँ कलाकार दूर से ही खडा दिखाई देता है, पर वह कला की छाया मे नही जाता, कला स्वयं उसकी छाया ग्रहण करती है। यह प्रसन्नता की बात है कि उस दिव्यात्मा का आशीर्वाद ग्रहण कर लेखिका अपनी स्वतन्त्र सत्ता का लोप और कला की आत्मा का सहार किये विना गीता मे सजय-सी अपनी 'झीकती भिखारिन' मे खडी है। यह उस कोटि की कृतियों मे है, जो कलाकार को जनता के हृदयो तक पहुँचने मे वाहन का उत्तरदायित्व वहन करती है।

यही उन की 'अञ्जनहारी' की चर्चा करना उचित होगा। उन के शयन-कक्ष मे एक अञ्जनहारी ने मिट्टी के छै घर बनाये और अण्डे रक्खे। सातवाँ घर वना कर, उस मे रखने को जब वह अण्डा ला रही थी तो विजली के पखे से टकरा कर कट गई। बस इतनी-सी बात है इस कहानी मे और कोई भी कह सकता है कि यह कतई साधारण बात है, पर लेखिका के हृदय की कोमलता, सहृदयता और मातृत्व का रस पान कर यही बात इतनी असाधारण होगई है कि वह हमारे साहित्य को यह स्वर्ण भेट दे सकी। मै इस कृति को उन की सर्वोत्तम कृति मानता हूँ और मेरा विश्वास है कि अँग्रेजी, जर्मन या फ्रेच भाषा मे हिन्दी कहानी का सही प्रतिनिधित्व करने के लिये

२५ कहानियाँ चुनी जाएँ तो यह आसानी के साथ उन में स्थान पा सकेगी।

अपनी भूमिका मे उन्होंने कहा है—

"इन कहानियों में कल्पना के करिश्मों का अभाव है। ये सब मेरे या मेरे साथियों के जीवन की घटनाएँ है। इन के पात्र मेरी 'सृष्टि' नहीं है, मेरे 'कामरेड' हैं। वे मेरे साथ हँसे, खेले और रोये। मै उन मे और वे मुझ मे बराबर डूबे रहे। लिखते समय मुझे कभी नही लगा कि मै लिख रही हूँ। सन्दलसिंह से मैंने बातें कीं, चञ्चल से चुहल और अञ्जनहारी, ललिता और झींकती के साथ मैं रोई!"

अपने पात्रों के साथ उन का यह तादात्म्य ही उन की सफलता की कुञ्जी है। यह तादात्म्य उन्हे अपने हृदय की सहानुभूति का उत्सर्ग अपने पात्रों के प्रति करने मे सहायक होता है। उन के व्यक्तिगत जीवन मे सहानुभूति, सहृदयता और स्नेह का यह अखण्ड भण्डार उन्हे प्रकृति से मिला है। विगत बीस वर्षों मे, वे बराबर फूलों मे रही हैं, पर वे अपने हाथ से कोई फूल तोड़ नहीं सकती। उन मे अनेक बार इस अभिलाषा का उदय हुआ है, वे वृक्ष के पास तक गई हैं, मन ने प्रेरणा की है, पर उन के संस्कार ने अँगुलियों को सहारा नहीं दिया। उन के शरीर पर काटते मच्छर को भी कोई उन की जानकारी में नही मार सकता

और छूत की भयङ्कर बीमारियों मे, अपने जीवन और बच्चों के लिये खतरा उठा कर भी उन्होंने रात-दिन अपने नौकरों की सेवा की है। 'अञ्जनहारी' की 'मै' और कोई नही, स्वय उस की लेखिका है और व्यक्तिगत सम्पर्क के कारण मै कह सकता हूँ कि वह उन के जीवन मे बीती घटना की अक्षरशः रिपोर्ट है। अपनी कहानियों मे अन्यत्र भी अनेक स्थलों पर लेखिका स्वय ही लेखिका और स्वय ही जीव-ब्रह्म के ऐक्य की तरह पात्र भी है।

झीकती, अञ्जनहारी, ललिता, सन्दलसिह की पत्नी, आशाराम और अपने दूसरे पात्रों के सुख-दुख की छाया उन के मन पर पड़ी और उसे उन्होंने अपना ही सुख-दुख समझा, यह उन की मानवता का चित्र है और उस छाया को अपनी कलम के सहारे वे कागज पर ज्यों-का-त्यों उतार पाईं, यहाँ वे कलाकार है। उस छाया को काग़ज पर ज्यों-की-त्यों उतारने मे उन की क्षमता असाधारण है और इस असाधारणता का चरम उत्कर्ष इस बात मे है कि अनुभूति की इस धारा के मन से काग़ज तक आने मे न तो कल्पना की रङ्गीनियाँ ही उस मे इस मात्रा मे मिल जाती है कि वह एक स्वप्न रह जाता और न उसमें इतनी छूट रह जाती है कि वह देवता की खण्डित मूर्ति-सी आँखों मे खटके।

इस प्रकार चन्द्रवती हमारे साहित्य मे जीवन का प्रतिनिधित्व करती है—न उन्हे स्वर्ग का छोर पृथ्वी के

आँचल से बाँधने की धुन है, न समाज-सुधार का झण्डा ही उन के हाथ मे है। वे एक मानवात्मा हैं और मानव की दृष्टि से संसार को देखती है। जो देखती है, वह उन्हे प्रभावित करता है और उसे वे सँवार कर साहित्य में रख देती है।

अपनी भूमिका मे वहुत सुन्दर ढङ्ग से उन्होंने अपने साहित्य की आधार भूमिका निर्देश कर दिया है—

> "शैशव-काल से ही मै नही जानती कैसे मुझ मे एक सस्कार है, जीवन को ऑख खोल कर देखने का। देखते-देखते जब भीतर भारी-सा एक संग्रह हो चला तो घर-गृहस्थी के सामान की तरह, उसे ठिकाने लगाने, व्यवस्थित करने की ज़रूरत पड़ी। मेरी कलम का यह कार्य उसी व्यवस्था का रूप है और संक्षेप में मेरे साहित्य का मनोविज्ञान और इतिहास यही है।"

उन की कहानियों का वातावरण प्रायः ऊँचे धरातल का है, यह उनकी सांसारिक परिस्थिति का परिणाम है, पर ऊँचाई के उन रेगिस्तानी टीलों पर उन्होंने अपने परिश्रम से जो वृक्ष लगाये, वे शोषण के एरण्ड नही, वातावरण मे कोमल सुरभिका संचार करने वाले कदम्ब है, जिन की छाया मे थकी, पीडित और कराहती मानवता को शीतल विश्राम की फुहारे मिली है।

उन की सांसारिक परिस्थिति को हम समझ ले।

अपने समय के प्रख्यात पुरुष-रत्न स्व० सर डाक्टर मोतीसागर की वे पुत्री हैं, जो आरम्भ मे पजाब के 'सीनियर मोस्ट' एडवोकेट थे, बाद मे तीन बार हाईकोर्ट के जज रहे और अन्त मे देहली यूनिवर्सिटी के वायस चांसलर हुए। अपने पिता की प्रतिष्ठा के अनुरूप, उत्तर भारत के प्रसिद्ध बैङ्क व्यवसायी भगवानदास वंश के रत्न श्री ऋषभसैन जैन के साथ उन का विवाह हुआ।

इस प्रकार लक्ष्मी के छम-छम वातावरण मे वे जन्मीं, पली, बढ़ी और रही, पर इस छम-छम वातावरण मे सरस्वती के विरोध की भावना न थी—दूसरे शब्दों मे उन्होंने चाँदी और स्वर्ण-जटित सिंहासन पर माँ भारती की प्रतिमा का पूजन देखा। जीवन के आरम्भ मे जब उन की होश ने पहली अँगडाई ली तो अपनी टुकुर-टुकुर आँखों से उन्होंने जहाँ मुवक्कलों की जेब से निकल कर हजारों रुपये अपने पिता की मेज पर छनकते देखे, वहाँ सुनहरी जिल्दों से जड़ी पुस्तकों से भरी अलमारियाँ भी देखीं और यह तो स्पष्ट है कि उन के बाल मन पर दोनों की ही छाप पडी।

उनके जीवन-सङ्गी श्री ऋषभसैन, जिनके वातावरण मे बढ कर उन की मनोवृत्तियों का विकास हुआ, स्वय एक विद्वान और व्यवस्थापक है। कॉलिज की शिक्षा के साथ उन्होंने विश्व-साहित्य का जो अध्ययन और संग्रह

किया, वह गौरव-पूर्ण है। उस अध्ययन का प्रभाव आज भी उन के जीवन मे व्याप्त है और वे स्वयं एक अच्छे लेखक है। हिन्दी के कई विद्वानों ने उन के लेखों की अच्छी प्रशसा की है।

उन का गृहस्थ-जीवन अत्यन्त मधुर, व्यवस्थित और ऊँची श्रेणी का है और उस में वे किस मात्रा मे ओत-प्रोत है, यह 'अञ्जनहारी', 'मेरी चुटिया उस के हाथ मे थी', 'ग़रीब का ईमान' और 'जब घर मे चोर था' मे उन का जो उल्लेख हुआ है, उस से स्पष्ट है और अपने समर्पण मं उन के चरित्र के लिये जो प्रमाण-पत्र लेखिका ने उन्हे दिया है, वह विश्व-विद्यालय के प्रमाण-पत्र से कही अधिक प्रमाणिक है—

"हम लड़े भी है, हम मे मतभेद भी रहे है, पर जीवन के सिद्धान्तों के प्रति आप की ईमानदारी सदा अभङ्ग रही है और मेरी दृष्टि से यह साधारण बात नही है—हमारे आज के सामाजिक जीवन मे, जहाँ नारी कर्तव्य मे कुबेर होकर भी अधिकार मे 'इंसालवेण्ट' है, निश्चय ही असाधारण है।

मुझे गर्व है कि आप सही मायने मे एक पुरुष है—सङ्घर्ष और शान्ति दोनों मे आप की दृढता समान रूप से अक्षुण्ण रही है, पर आप के पौरुष का अभिमान साम्राज्यवादी अँग्रेजों की तरह, साथी के

स्वतन्त्र व्यक्तित्व का संहार कर कभी शासक होने मे उत्सुक नही हुआ। उसे सदा ही साम्यवादी सोवियट की तरह स्वतन्त्र साथी के सहयोग की प्यास रही।"

मातु श्री श्रीमती सेवतीदेवी—लेखिका की सासु—का यहाँ उल्लेख न करना, इस विवरण मे अपूर्णता की सृष्टि करेगा, जिन्होंने बीते युग का प्रतिनिधि हो कर भी अपनी 'बहू' की नवयुग-प्रवृत्ति को सदैव प्रोत्साहन दिया और जिन की छाया मे आज भी वे मातृ-अङ्क की निर्द्वन्द उत्फुल्लता का उपभोग पा उन का मन विशालता की लहरे लिया करता है।

लेखिका के व्यक्तित्व-विकास की कुञ्जी यही है और इसी से हम जान सकते है कि वैभव के उस वातावरण मे मानवता के कणों का यह प्रकाश कैसे फैला ?

लेखिका के शब्दों मे 'इन कहानियो मे कल्पना के करिश्मों का अभाव है।' पर विविध मनोवृत्तियों का चित्रण सुन्दर और सही हुआ है और उस से चन्द्रवती के मनोवैज्ञानिक अध्ययन की गहराई हम माप सकते है। उन के सभी पात्र जीते-जागते है, साहित्यिक सजीवता की दृष्टि से ही नही, सांसारिक जीवन की दृष्टि से भी। उन की मनोवृत्तियों का ठीक चित्रण करने मे, व्यक्तिगत सम्पर्क और अनुभूति के कारण लेखिका को पर्याप्त सुविधा प्राप्त हुई है और उन के हृदय की समवेदना शीलता ने उन्हे

अपने पात्रों मे, रूप मे शृङ्गार-सी, इस तरह मिला दिया है कि उस का वातावरण सर्वत्र कृत्रिमता के कल्मप से अछूता रह, स्वाभाविकता की सरिता मे अवगाहन कर दीप्तिमान हो उठा है, इस हद तक कि स्थान-स्थान पर सङ्केत हो उठता है, हम कहानी पढ रहे है या किसी घटना का विवरण।

एक बात और, वे स्वयं स्त्री हैं, स्त्री के सुख-दुख, अभिलाप का उन्हे परिचय होना ही चाहिए, इस लिये उन की कहानियों मे नारी के हृदय का प्रतिनिधित्व बहुत उच्च कोटि का हुआ है। झीकती, परी, शवनम, चञ्चल, ललिता, सन्दलसिह की पत्नी और मङ्गला, उन के कलम-शिल्प के सुन्दरतम नमूने है, जहाँ उन्होंने नारी हृदय को साकारता दी है, पर पुरुप के सुख-दुख, अभिलाप का फोटो उतारने मे भी उन की सूक्ष्मस्पर्शी कलम नही चूकी। एक पुरुष के नाते मै कह सकता हूँ कि पुरुष के साथ उन्होंने कहीं अन्याय नही किया। सूरदास, लाला जी, रहमत, सन्दलसिंह, भैया, बलदेवदास, धीरजसिह, भोलाराम और जगू भी उन के उतने ही सफल चित्र है।

चन्द्रवती बातचीत मे सरल हो कर भी बहुत साफ है। गोलमाल या उलझा उत्तर उन के मन की बात नहीं। अपनी कहानियों मे भी उन के इस स्वभाव का प्रस्फुटन हुआ है। और स्थान-स्थान पर उन्होंने जो सम्वाद लिखे

है, वे जोरदार, स्पष्ट और मर्मस्पर्शी हैं और मेरा विश्वास है कि वे किसी कलापूर्ण फिल्म के लिये बहुत सुन्दर 'डायलॉग' लिख सकती है। मैं उन के सम्वादों को उन की कहानियों की एक विशेषता मानता हूँ और अत्यन्त नम्रता के साथ निवेदन करना चाहूँगा कि इस विषय मे हिन्दी की कोई कहानी-लेखिका, अभी तक उन से 'मैच' नहीं करती।

वे लाहौर मे पली और देहली मे जन्मीं। इस तरह उन की भाषा पर इस वातावरण का प्रभाव पड़ा और बाद मे उन्होंने जैन-साहित्य का अध्ययन अनुवादों के रूप मे किया और फल-स्वरूप उन की भाषा का शरीर उर्दू की सरलता से निर्मित हुआ और उस मे संस्कृत की सरस आत्मा प्रतिष्ठित हुई। बाद में उन्होंने हिन्दी-हिन्दुस्तानी के विवाद मे दिलचस्पी ली और बाद की कहानियों मे हिन्दी-पक्षपाती होने के कारण, उन के विश्लेषणों मे उच्च कोटि की हिन्दी का भी दर्शन हमे मिला। सब मिला कर उन की भाषा सरल, सरस और सर्वत्र प्रवाह-पूर्ण है। उस मे ओज भी है, चोज भी है और उस ने उन की कहानियों को निखार दिया है।

अपनी भाषा मे उन्होंने पुराने मुहावरों का नये रूप मे, नई शक्ति के साथ प्रयोग किया है और नये मुहावरो का निर्माण भी किया है। 'वे तीन दिन' में एक स्थान पर आया है—"चञ्चल की अभिरुचि का पता

लगाना, ख़ुदा के सिर पर मौड बाँधना था।" यह उन की अपनी विशेषता है। नई उपमाओं का निर्माण और प्रयोग दोनों दृष्टियों से उन का स्थान सम्मान पूर्ण है। ये उपमाएँ उन्होंने हमारे नये युग से ली है और उनका फिटिङ्ग इतना सही है कि कोई भी 'वर्कशाप' उस पर अपनी प्रसन्नता प्रकट करेगा। 'झीकती' और 'सूरदास' के मिलन को उन्होंने दो विभिन्न दिशा से आने वाली गाड़ियों की तरह कहा है और 'अञ्जनहारी' मे एक स्थल पर उन्होंने 'टारपीडो' के वातावरण का लाभ लिया है, जो अत्यन्त सुन्दर है।

उन की शैली की एक विशेषता, जिस ने मुझे प्रभावित किया, यह है कि उस मे कहीं कृत्रिमता नहीं है, निर्झर के निर्मल प्रवाह की भाँति, वे जो कुछ मन मे है, उसे कह देती है, कहती चली जाती है। अपनी भावना के लिये, उन्हे भाषा, उपमा, जोर, सुन्दरता या दूसरा कुछ भी 'गढ़ना' नहीं पड़ता, तन्मयता की 'मूड' मे उस का उद्गम होता रहता है और वे सिर्फ सँभाल कर उसे कागज़ पर ले लेती है। यही कारण है कि उन की कहानियों मे कही उलझाव नहीं है और पढ़ते समय हम उन की कहानियों मे साक्षात् घटी घटनाओं की तरह रम रहते हैं, रस लेते हैं और पात्रों के सुख-दुख की भाव-गङ्गा में अवगाहन कर पाते है।

'झींकती' में चौराहे पर बैठा सूरदास, भोजन के बाद कहता है—

> "ले, हाथ इधर करना !"
>
> झींकती ने अपना हाथ सूरदास के पास किया और उस ने चुपके से उस पर दो पैसे रख दिये।
>
> "जा, अपने लिये दही बूरा लेती जाना।"
>
> पैसे वापस लेने का आग्रह करते हुए झींकती ने कहा—"मैं यों ही धेली रोज़ चाटा करूँगी तो यह घर कितने दिन चलेगा ? और फिर तुम कुछ खा लो तो ठीक भी है, सारे दिन गला फाड़ते हो। मुझे कहाँ हल मे जुडना है ?"
>
> दोनों पैसे उसी की मुट्ठी मे दबाते हुए सूरदास ने कहा—"जा, जा, दही को जी न चाहे तो मलाई का बरफ खा लेना। बावली ! जो खा-पहन लो, वही अपना है।"
>
> झींकती आसमान मे उड़ी-सी चली। उस का रोम-रोम जैसे रेडियो बन कर बोल रहा था—"हूँ ! जैसे मैं कोई बालक हूँ, दही को जी न चाहे तो मलाई का बरफ खा लेना !" और तृप्ति के रस मे डूबे उस के ओंठ खिल पडे !

हमारे दाम्पत्य-जीवन की कितनी सुन्दर, पूर्ण और मधुर झाँकी है। बाते करते सूरदास और झींकती जैसे हमारी आँखों में घूम जाते है।

'वे तीन दिन' में सुन्दरसिंह चञ्चल वेश्या के घर दो बार आया और गाना सुन, रुपये लुटा, बिना उस मे कोई दिलचस्पी लिये, उधर देखे, चला गया।

तीसरी बार भी वही बात। इस बार चञ्चल के गर्व की गाँठ खुल गई और खुद मुँह फोड़ कर उस ने चलते-चलते सुन्दर से कहा—

"क्या मै जनाब के बारे मे कुछ जान सकती हूँ?"

"हाँ, हाँ, नाम सुन्दरसिंह, काम माल बाबू और शौक सा-रे-गा-मा!"

"अब कब तशरीफ लाइयेगा?"

"जब पैर धड़ को उठा लाएँ और तबियत मे उमङ्ग हो।"

"तब भी तो?"

"कल ही, दस दिन मे या फिर कभी नहीं!"

यह एक पुरुष का सही चित्र है—निर्द्वन्द, निर्लिप्त, अभङ्ग-दृढ़! इस सम्वाद की गहराई समझने और रस लेने के लिये यह आवश्यक है कि नर के प्रति नारी के आकर्षण का मनोवैज्ञानिक आधार हम जाने।

बस एक और,

"तुम दिल्ली की सैर करते रहे मियाँ रहमत, और तुम्हारी शबनम की शादी भी हो गई! वो बाजे बजे और दावतें उड़ीं कि लुत्फ आ गया!"

अपनी दूकान का सामान खरीद कर दस दिन बाद जब देहली से रहमत लौटा तो चुटकियाँ लेते हुए उस की भावज ने कहा। रहमत के लिये यह एक मजाक थी, वैसे ही उस ने उत्तर दिया—"और बेचारी शबनम की शादी देख कर तुम जैसी बुढिया को भी रश्क हुआ। क्यों भाभी, है न यही बात ?"

"मुझे क्यों रश्क होगा। मेरे तो छः फीट का गुड्डा बालों मे खिजाब लगाये घूमता है। रश्क होगा भैया तुम्हे, जो सिर पर मौड़ बाँधने को पागल हुए फिरते थे, पर शबनम ने जिन की बात भी न पूछी।"

"जब मेरे सिर पर मौड बँधे और शबनम दुलहन बनी शर्माती डोले से उतरे, तब तुम छींक देना और अपने गुड्डे को भी सूघनी सुघा देना !"

हमारे परिवार मे भाभी जीवन का स्रोत है। वह बड़ी है, पर श्रद्धा के बोझ से हमे नहीं दबाती। हम उस के सामने छोटे है, पर अपनी लघुता का पाठ हमे नही पढना पड़ता। वह अपने स्नेह का दान करती है, बहिन के रूप मे, पर साथी के रूप मे साथ ही हँस-बोल कर। वह कोरा सत्य नहीं है, सत्य और नीति का मधुर समन्वय है। ऊपर के सम्वाद मे देवर और भाभी का जो चित्र है, वह हमारा प्रति दिन का देखा है और हम उस मे अपने जीवन की छवि देख सकते है।

उन के जीवन में इधर आध्यात्मिक परिवर्तन की लहरें आ रही हैं। अब वैभव भरे वातावरण की झम-झम मे उन का अन्तर नहीं उलझता और उन्हे आश्रम के स्वप्न आते है—यह जीवन भर क्षण-क्षण साथ रहे रज की सत्व के प्रति प्रतिक्रिया है।

उन के जीवन मे जो यह आध्यात्मिक परिवर्तन हो रहा है, उस का मनोवैज्ञानिक आधार है उन का ईश्वर-विश्वास। अपने छोटे-से पूजा-मन्दिर मे बैठ कर जब वे भगवान का ध्यान करती है तो बच्चों का कोलाहल और पुकार भी उन के कानों को आन्दोलित नहीं कर पाते। चिरकाल से जैसे वे भगवान की शरणागति का अभ्यास करती रही है और दिन-दिन उन की सांसारिक परिस्थितियों के कारण जीवन मे व्याप्त 'रज' घुल-घुल कर 'सत्व' मे लीन होता रहा है।

उन के जीवन मे निर्णायक स्वप्नों का एक विचित्र क्रम रहा है, समय-समय पर उन के जीवन मे जो बड़े परिवर्तन आये हैं, उन मे सदा ही स्वप्नों का निर्देश काम करता रहा है। यह उन के जीवन की एक दैविक घटना है और इसी शृङ्खला में उन के आज के आध्यात्मिक परिवर्तन का अङ्कुर-विकास हम देख पाते है।

इस प्रतिक्रिया के दो रूप है। एक साहित्यिक और दूसरा सामाजिक। साहित्यिक रूप यह कि अब अपनी

कहानियों में वर्णन और चित्रण के साथ वे विश्लेषण की ओर अभिमुख हो चली है। हमारे देश में पुरुष बुरी तरह स्त्रियों को घूरते है। देश भर की शिक्षित-अशिक्षित स्त्रियाँ, इस के लिये पुरुषों को कोसती है और हम पुरुष स्वय अपनी हीनता अनुभव करते है, पर अपनी 'धवल छत्र की छाया में' कहानी की भूमिका मे चन्द्रवती जी ने इस का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण कर के इसे पुरुपो के लिये लांछन मानने से इंकार कर दिया है। सम्पूर्ण पुरुष जाति को इस के लिये उन का कृतज्ञ होना चाहिए।

'भैया की डायरी' और 'ग़रीब का ईमान' मे भी कई जगह उन्होंने अपनी इस प्रवृत्ति का सूक्ष्म प्रदर्शन किया है। हम चाहेगे कि उनकी यह प्रवृत्ति अधिक विकास ले और उस से हमारी हिन्दी के कहानी-साहित्य मे सत्य और शिव की सृष्टि हो।

'जीवन-कला-मन्दिर' की आयोजना, उस प्रतिक्रिया का सामाजिक रूप है। इस सस्था की अभी आरम्भिक रूप-रेखा ही सामने आई है, पर उसी के सहारे मै कह सकता हूँ कि अगले दस वर्षों मे यह संस्था अपने ढङ्ग पर उत्तर भारत मे छोटे शान्ति-निकेतन का-सा स्थान और सम्मान ग्रहण करेगी। बालक, नारी, दलित और साहित्य उस के ये चार विभाग है। इधर उस के अधिष्ठाता के रूप मे चन्द्रवती जी ने हमारे घरेलू नौकरों के सम्बन्ध मे कुछ

परीक्षण किये है कि कैसे उन के जीवन का मानदण्ड ऊँचा उठे और बालकों के सम्बन्ध मे श्री ऋषभसैन जी ने कि उन का विकास सुगम हो। ये सब प्रवृत्तियाँ इस बात के सङ्केत है कि मानवात्मा की सेवा की पुकार उन के भावुक हृदय तक पहुँच गई है और निकट भविष्य मे उन के द्वारा हमारी सस्कृति, हमारे समाज और हमारे साहित्य के लिये कुछ विशिष्ट कार्य होने को है। मै जानता हूँ, उन के साधन विस्तृत है, उन की सङ्गठन-शक्ति सबल है, उन मे सूझ है और भगवान की कृपा उन के सिर पर है। मेरा विश्वास है कि सफलता निश्चय ही उन के द्वारदेश का आश्रय ग्रहण करेगी और अपने उद्देश्य की पवित्रता और ऊँचाई उन्हे दिन-दिन बल देगी।

—कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर'

नींव की ईंट

झाँकती भिखारिन

१

सड़क पर पड़े ढेले के पीछे भी एक इतिहास है और उस के जीवन की भी एक कहानी है। इधर-उधर उड़ते छोटे-से पीले पत्ते के पीछे भी एक इतिहास है और उस के जीवन की भी एक कहानी है, तो झींकती के पीछे भी एक इतिहास होगा और उस के जीवन की भी एक कहानी है।

पर कहानी-लेखिका का काम किसी के जीवन की घटनाओं के सन्-संवत इकट्ठे करना नहीं है और न उसे साल-साल के ब्यौरों की प्रदर्शिनी ही करनी है। वह तो कहानी-लेखिका है और उस का काम जीवन के विशाल बिखरे पृष्ठों में से थोड़ा-सा संग्रह करके बाकी 'सब' को छोड़ देना है।

वह 'सब' भी बहुत उपयोगी है, पर जीवन में उपयोगी तो खाद भी है और रेखाएँ भी। कलाकार सिर्फ उन पतली रेखाओं का ही उपयोग करता है और किसान के लिये यह सब ऊल-जलूल बातें है। उसे जीवन मे बस खाद का ही उपयोग करना है।

झींकती का असली नाम झूमकी था। वह कब और कहाँ माँ के पेट से इस धराधाम पर उतरी और कैसे घर के ममता भरे वातावरण से छूट कर भिखारिन बनी, इस का लेखा-जोखा मै नही दूँगी। झूमकी अब झींकती है, भिखारिन है, बस यहीं से मेरी कहानी का आरम्भ है।

झींकती ने जिस दिन भिखारी-जीवन मे प्रवेश किया, उस का एक मनोरञ्जक संस्मरण है। रामदीन की दोनों आँखे जन्म से ही अन्धी थीं। चढ़ती उम्र, भरा बदन और पक्का रङ्ग। गला लोचदार न हो तो सूरदास क्या ? वह रेलवे रोड के चौराहे पर, पेड़ के नीचे बैठता और सुबह से शाम तक रट लगाता था। उस के गले मे कुछ ऐसा दर्द था और उस की जन्म-कुण्डली मे ग्रहों का जमाव कुछ इस तरह हुआ था कि उसे देख कर बड़े-बड़े कंजूसों की अँगुलियाँ बटवे से टकरा जाती थीं।

झींकती ने उसे देखा और धीरे से आकर वह उस के पास बैठ गयी, लगी-लगी-सी, कुछ बची-बची-सी, सङ्कोच

मे लिपटी, आकाशबेल-सी लहराती, बल खाती और सकुचाती।

"सूरदास, तुम कहाँ रहते हो ?"

"माई, भिखारी का क्या रहना ? भगत मङ्गलदास की बगीची मे पडा रहता हूँ। और भी बहुत से फकीर वहाँ रहते है।"

"तुम्हे यहाँ कौन छोड़ जाता है सूरदास ?"

"कौन छोड़ जाता माई, और कौन लेजाता ! टटोलता हुआ सुबह आजाता हूँ और शाम को चला जाता हूँ।"

"और जो कही ठोकर लग जाय ?"

"ठोकरे खाने को तो अन्धे का जन्म-ही होता है माई !"

"हाय-हाय, सूरदास ! तुम ऐसी बाते क्यों करते हो ?" झीकती का मन करुणा से भीग गया और न जाने कब और कैसे उस का दाहिना हाथ सूरदास के कन्धे पर जा टिका। सूरदास का रोम-रोम जैसे एक मीठे कम्प से भर गया और झीकती के मन मे जैसे युग-युग की सोई एक आकुल प्यास जाग उठी। उसका शरीर अनजाने सरक कर सूरदास के और भी पास हो आया।

अब झींकती का घुटना सूरदास के घुटने से मिला था और उस का हाथ धीरे-धीरे सूरदास की कमर पर

लोरियाँ-सी देरहा था; जैसे मास्टर अपने लड़के शितावी पर हिप्नोटिज्म के पास कर रहा हो।

"सारी दुनिया की दौलत एक तरफ और आँख की दौलत एक तरफ। आँखें वालो ! इस अन्धे की तरफ भी देखते जाना !"

सूरदास अपने भिक्षा-आन्दोलन का यह नारा बीच-बीच मे लगा देता था। आज उस के फेफड़ों में उमङ्ग की जो उभरन थी, उस ने उस के गले के लोच को और भी दोबाला कर दिया था।

उसके भीतर—मन के आँगन में—कल्पनाओं की पुतलियाँ नाच रही थीं और पलक मारते न जाने कितने हवाई महल उसने खड़े कर लिये थे।

अब सारे भिखारी उस की किस्मत पर रश्क करेंगे और वह राजा की तरह रहेगा। क्या ज़रूरत है उसे कि अब वह सन्तराम और नन्दा, भिखारीदास और गिरधर के सामने एक-एक टुकड़े को हाथ पसारे। अब उस के यहाँ बाक़ायदा भोजन बनेगा और उसी से ये लोग टुकड़े माँगेगे। मैं बैठ कर रोटी खाऊँगा और यह पङ्खा झलेगी।

थोड़े दिनों मे गोपालजी की कृपा से लड़का हो जाएगा और मेरे पेट पर बैठा खेला करेगा। अब भी भगवान की दया है, धेली रोज़ फटकार ही लेता हूँ।

खा-पीकर तीन बिस्सी रुपये जोड लिये है। फिर तो बच्चे को देख कर लोगों में और भी दया उपजेगी। दिन भर मे एक डब्बल चतुर्भुजी फटकार दिया करूँगा और बस अलग कुटिया बना लूँगा।

उस की अन्धी आँखों में जैसे रोशनी उतर आई।

झींकती खामोश थी, पर खामोशी की इस धुरी पर विचारों का पहिया बराबर घूम रहा था। उस के अँधेरे अन्तर की अमा में आज जैसे दीपावली जगमगा उठी थी।

अब उस का भी कोई अपना है। आँखे नहीं है तो क्या, कैसा सुन्दर है सूरदास! किस्मत का धनी है; पैसा-ही-पैसा बरसता है दिन भर! अब तक तो जो कमाता है, उड़ा देता होगा। अब मै देख-भाल कर खर्च करूँगी और एक पैसा खर्चूंगी तो एक बचाऊँगी। घर मे दुख पहले है, सुख पीछे। ठण्ड लग जाए, आजाए बुखार, चार दिन पड़ना पड़े, तो क्या मैं माँगती फिरूँगी!

भीतर का सन्तोष उस के चेहरे पर चमक आया। चिर अतीत मे, समारोह भरी सभा के बीच, जीवन-साथी का स्वयंवर कर, नारी को यह सन्तोष, इस मात्रा मे मिला होगा या नही, कहानी-लेखिका के लिये यह कहना कठिन है।

शाम को सूरदास चला तो झींकती ने उस की लाठी अपने हाथ मे लेली। सूरदास आज जैसे हवाई जहाज पर

चढ़ा चला जारहा था। मङ्गलदास की बगीची में आज की सन्ध्या सूरदास के भाग्य की चर्चा मे डूब गयी।

इस चर्चा मे प्रसन्नता और ईर्ष्या की दो तहे थीं। ऊपर प्रसन्नता की और नीचे ईर्ष्या की। कहीं-कहीं तो नीचे की तह इतनी उग्र थी कि वह ऊपर की तह को बेध कर झाँक चली थी, पर सूरदास का आज इधर ध्यान न था।

उसने अपनी फतुही की जेब से दिन भर की कमाई निकाल कर झीकती के हाथ मे रख दी।

"ले, जरा गिन तो कितने है?"

"आठ आने पूरे और सवा आना है!"

झीकती ने उत्साह मे डूब कर वे पैसे गिन कर कहा और जैसे अपना बैकिङ्ग का सम्पूर्ण ज्ञान उन पैसों पर बखेर दिया—"आठ आने पूरे और सवा आना है।"

"है भागवान! रोज मुश्किल से धेली हाथ लगती थी। आज उस के ऊपर भी हनुमानजी का पञ्जा है।"

भीतर का उत्साह जैसे सूरदास के कन्धों मे गमक उठा, और उसने टटोल कर झीकती का मुँह चूम लिया।

बीसवी सदी की कहानी-लेखिका को साहित्य के नभ मे, कल्पना के सहारे, उडान भरने का अधिकार एक सीमा तक ही है, नही तो नवल-दम्पति के इस मधुर-मिलन पर

आकाश से फूल बरस पड़ते, दिशाएँ हँसने लगतीं और स्वर्ग के देवता, विमानों पर बैठे, प्रेम के इस महोत्सव को देखने दौड़े आते।

उन्नीसवीं सदी का अन्त होता तब भी, चारों ओर से—सभी दिशाओं से—प्रेम की गुञ्जार सुनाई देती और हरेक वृक्ष एव पल्लव उस की प्रतिध्वनि करता।

नये युग ने कहानी-लेखिका को जो कुछ अधिकार दे रक्खे हैं, उन का वह पूरा उपयोग भी करे तो यही कहेगी कि दो विभिन्न दिशाओं से आने वाली रेलवे-लाइनों की तरह, वे प्रेम के काँटे पर मिले और एक होगये थे। उन की जीवन-रेल अब उस समान पटरी पर निर्बाध गति से बढ़ी चली जारही थी और यह भी कि अब यह कहना कठिन था कि यह गाड़ी असल मे किस पटरी से आकर इस समान पटरी पर चढी है।

२

सुबह को झींकती सूरदास का हाथ थामे, उसे चौराहे पर छोड़ जाती। पहले सूरदास की सारी चेतना मार्ग का सन्धान करने मे व्यय होजाती थी—वह मोटर, यह साइकिल, वह ताँगा। बाईं ओर, दाईं ओर, और मोड की सतर्कता, पर अब ये सब ज़िम्मेदारियाँ झींकती ने

नौ

अपने ऊपर ले ली थी और इन सब के स्थान मे सूरदास के मन मे आ बैठी थी झीकती।

वह झीकती का चिकना हाथ थामे, उसी के ध्यान मे डूबा चला जाता। अब उसे अपनी चाल हावडा एक्सप्रेस से भी तेज़ लगती।

चौराहे पर पहुँच कर, झीकती अपनी बगल से निकाल कर, दरी का एक टुकड़ा बिछाती और उसे फटे बोरी के एक टुकड़े से ढक देती। सूरदास उस आसन को छूकर हाथ माथे से लगाता, मङ्गलाचरण करता—'देना बरकत गोपाल' और बैठ कर आसन को एक बार हाथ से टटोलता।

उस के गुदगुदेपन से उस का मन गुदगुदा उठता और उसे वह लुत्फ़ आता जो पहली बार दिल्ली के तख्तताऊस पर बैठे नादिरशाह को भी न आया होगा। उस की सफेद आँखे और काले ओंठ, दोनों मे एक साथ हँसी भर जाती और भीतर की मस्ती भीतर न समा कर, जैसे उस के स्वर मे बाहर मचमचा उठती—

"आँखे वालो! इस अन्धे की तरफ भी देखते जाना।"

पास खड़ी झीकती यह सब देखती और भूल जाती कि वह कहाँ खड़ी है। चौराहा, मुसाफिर, खटपट, सब कुछ वह भूल जाती और सच तो यह है कि वह

सूरदास को भी भूल जाती। उस के भीतर भर जाता एक गूगा आनन्द और उसे दिखाई देती सूरदास के चेहरे पर इठलाती मस्ती की लहरे और उन पर तैरता ख़ुद उस का रूप !

"अच्छा, आज क्या बनाऊँ तुम्हारे लिये ?"

"जो तुम्हे रुचे, और तुम तो जो भी बना लेती हो उसी मे रस आजाता है।"

"बात-बे-बात, बस तुम्हें तो मेरी तारीफ़ के पुल बाँधने है।"

और वह भोजन का प्रबन्ध करने बगीची की ओर लौट पडती। चौराहे के दूसरे किनारे जाकर वह एक बार पीछे की ओर देखती कि सूरदास बैठा गमक रहा है। इस के बाद भी दूर तक सूरदास की आवाज़ उस के कानों मे आती रहती—

"आँखे वालो ! इस अन्धे की तरफ भी देखते जाना !"

झींकती का रोम-रोम अनबोलती बोली मे बोल उठता—"कैसी प्यारी आवाज है सूरदास की !" और उस की आँखों मे घूम जाता सूरदास के उभरे पुट्ठों का शरीर। रस भरी कल्पना के झूले पर झूलती झींकती बगीची में आ पहुँचती।

दोपहर को झींकती रोटियाँ लेकर चौराहे पर पहुँचती और एक ही वाक्य में सूरदास का सारा थकान उतार देती—

"लो, खाना खा लो ! चिल्लाते-चिल्लाते गला भी टूट जाता होगा। दुनिया जानती है, ये भिखारी आराम की तोड़ते है। इन बाबुओं को एक दिन यहाँ बैठना पड़े तो पता चले कि भीख की रोटियाँ कितनी मीठी होती है ?"

"भोजन तो ऐसा बनाती है कि राजा भोज के महलों में भी न बनता होगा। पर यह यहाँ तक गरम कैसे रहता है ?"

झीकती ममता की गङ्गा मे डूब-डूब जाती।

"गरम-गरम कपड़े मे लपेट कर, दौड़ी चली आती हूँ।"

सूरदास की अन्धी आँखों मे खेल गई एक तस्वीर दौड़ी-दौड़ी आती झीकती की ओर जैसे उस के शरीर का खून भी जोर से दौड़ चला।

झींकती अपने आँचल का पङ्खा झलती और सूरदास भोजन करता।

"शहरों मे तो हरेक आदमी लाट साहब बना फिरता है सूरदास ! पता नही, इन पर इतना धन कहाँ से टूट पड़ा है।

सूरदास ने अपने विगत जीवन के अनुभव की झाँकी लेते हुए कहा—"ये लाट साहब पूरे पशु है, जानवर ! भिखारी को ये पैसा नही देते, उपदेश पिलाते है कमबख़्त ! जब पुराने ढङ्ग के सीधे और ग़रीब आदमी

इस दुनिया मे न रहेंगे तो इन लाखों भिखारियों का क्या होगा, मै यही सोचा करता हूँ झीकती ?"

"चलो, भगवान तब भी कुछ करेंगे ही। आखिर रिज़क का ठेका तो रहीम ने ही ले रक्खा है।"

"और क्या ?"

"तुम कहो तो मै कचहरी के चौहारे पर बैठने लगू ? दो-चार आने मिलेंगे ही। खा-पीकर दस पैसे पीछे पड़ेगे तो कल को काम आवेगे। पता नही कैसा समय आने वाला है।"

मीठे-मीठे झिडक कर सूरदास ने कहा—"पगली, कैसा-ही समय आए, मै तो हूँ ! तुम्हे अपने जीते जी मैं चौराहे पर बैठने दूँगा मेरी रानी ?"

पता नही, झींकती इस सम्बोधन के वाद रानी हुई या नहीं, पर स्वयं सूरदास की छाती राजा के गौरव से भर उठी। बीसवी सदी की पावन्दियों का भय न होता तो कहानी-लेखिका उपमाओं और अलङ्कारों का ऐसा जाल बिछाती कि पाठक उर्दू मशायरों की तरह वाह-वाह से आकाश गुञ्जा देते।

"ले, हाथ इधर करना।"

झीकती ने अपना हाथ सूरदास के पास किया और उस ने चुपके से उस पर दो पैसे रख दिये।

"जा, अपने लिये दही-बूरा लेती जाना।"

पैसे वापस लेने का आग्रह करते हुए भींकती ने कहा—"मैं यों ही धेली रोज़ चाटा करूँगी तो यह घर कितने दिन चलेगा ? और फिर तुम कुछ खा लो तो ठीक भी है, सारे दिन गला फाड़ते हो। मुझे कहाँ हल में जुड़ना है ?"

दोनों पैसे उसी की मुट्ठी मे दबाते हुए सूरदास ने कहा—"जा, जा, दही को जी न चाहे तो मलाई का बरफ खा लेना। बावली ! जो खा-पहन लो, वही अपना है।"

भींकती आसमान में उड़ती-सी चली। उस का रोम-रोम जैसे रेडियो बन कर बोल रहा था—"हूँ ! जैसे मैं कोई बालक हूँ, दही को जी न चाहे तो मलाई का बरफ ले लेना !" और तृप्ति के रस मे डूबे उस के ओंठ खिल पड़े !

३

"तुम ही हो मेरे माई-बाप, एक पैसा भूखे पेट को दइयो !"

उस दिन 'रामलिला' के—मीठे गीत की तरह—लोच भरे स्वर से चौराहा भर गया और इस नये स्वर की लहरों मे सूरदास को लगा, जैसे उस का स्वर डूबने लगा है।

"यह भूतनी-सी कौन चिल्ला रही है झीकती ?"

"भूतनी क्यों, कम्बख्त परी है परी। भीख माँगने की आदत है, किसी कोठे पर जा बैठे तो लाख का जेवर पहने।"

झींकती जब घर चली गई तो सूरदास के कानों मे जैसे उस की आवाज बार-बार गूजने लगी—'कम्बख्त परी है परी।'

वह सोचने लगा—रूप का पता तो आँख वालों को होगा, आवाज़ जरूर परी जैसी है। पर यह परी यहाँ कुछ दिन जम गई तो इस की आवाज़ के तूफान मे मेरा तो सारा रोजगार ही डूब जाएगा। भगवान करे, इसे रात मे प्लेग होजाए।

सूरदास के भीतर एक सिनेमा-सा खुल गया। एक परी-सी भिखारिन एक सुनसान कुटिया मे अपने बिस्तरे पर पडी तड़फ रही है। प्लेग का वह शिकार है। बुखार १०७ तक, जैसे वह इस ज्वाला मे जल जायेगी। कोई पानी की बूद देने वाला नही और उसके भीतर प्यास की आँधी चल रही है। भिखारिन मर रही है। उस का परी-सा रूप मलीन होने लगा है। कभी-कभी वह आँखे खोल कर इधर-उधर देखती है, और ऐसा लगता है कि अब बस वह सदा के लिये आँखे बन्द कर लेगी।

सूरदास का जी धक्-से हो गया। यह प्लेग उसी के श्राप का तो साकार रूप है। और वह जैसे उस

भिखारिन को बचाने के लिये अधीर हो उठा। नहीं, वह उसे मरने न देगा। उस के पास जीवन भर की जो भी जमा-जोखम है, वह सब फूक देगा, डाक्टरों की भीड़ जोड़ेगा, महावीर स्वामी का कड़ाह करेगा, पर उस परी-सी भिखारिन को मरने न देगा।

"तुम ही हो मेरे माई-बाप, एक पैसा भूखे पेट को दइयो।"

परी-सी भिखारिन की आवाज़ सूरदास के कानों मे पड़ी और झटका खा कर वह जैसे आसमानी दुनिया से जमीन पर आगया।

ओह, वह परी-सी भिखारिन तन्दुरुस्त है और उस के ही खेत मे, उस की छाती पर मूङ्ग दलने को बैठी है। यहाँ यह जम गई तो इस की आवाज़ के तूफान में मेरा तो रोज़गार ही चौपट हो जाएगा।

सूरदास के मन मे आया कि उस का श्राप इसी घड़ी भयङ्कर रूप धारण कर ले और प्लेग का भूत इस सुन्दर साँप का गला घोट दे। पर दूसरे ही क्षण उसे सन्तोष हुआ कि उस के श्राप मे दुर्वासा के श्राप की-सी शक्ति नही है, इस लिये चौराहे की शकुन्तला सुरक्षित है।

सूरदास अपनी लाठी लिये उठा और स्वर की सीध लिये उस परी-सी भिखारिन से जा लगा। भिखारिन ने देखा—सूरदास के रूप में, स्वर्ग की कोई विभूति, बिना

बुलाये, उस के सम्मुख आ खड़ी है। उस की हसरत भरी आँखों में वह जैसे रम गया। अपने फटे कम्बल का आसन उस ने सूरदास के नीचे बिछा दिया।

"तुम तो यहाँ बहुत दिन से बैठते हो सूरदास ?"

"हाँ, कई साल हो गये है। तुम कहाँ से आ रही हो ?"

"भिखारी का कहाँ क्या ? यों ही घूमती आ निकली, चार दिन मे आगे हो जाऊँगी।"

चार दिन मे उस के चले जाने की यह बात सूरदास को अच्छी नहीं लगी। उस ने दो आने अपनी फतुही मे से निकाल कर भिखारिन के हाथ पर रख दिये।

"ले, शाम को चार कचौरी खा लेना। अभी नई है। पता नही कोई पैसा मिला होगा या नहीं। काम धीरे-धीरे ही जमता है।"

"सूरदास, यह तुम्हारे साथ बुढ़िया कौन है ?"

"कौन बुढिया ? मेरे साथ तो कोई बुढ़िया नही है।"

"वही जो खाना ले कर सुबह आई थी !"

"अच्छा, झींकती ? वह बुढ़िया है ? हाँ, वह मेरे साथ रहती है !"

"बुढ़िया नहीं तो क्या जवान है ? जैसी सूरत है, वैसा ही नाम है।"

४

सूरदास आकर अपनी जगह बैठ गया। सडक खूब चल रही थी, पर आज पैसों की तरफ उस का ध्यान न था। उस के अन्तर-सागर में आज एक नया ज्वार आ गया था।

झीकती का जैसा नाम है, वैसी ही उस की सूरत है। वह बुढिया नही तो क्या जवान है? और यह भिखारिन? रूप मे परी, कण्ठ मे कोयल और उम्र मे षोडशी! ऐसे लोच मे पैसा माँगती है कि मुर्दे भी अण्टी टटोलते चले आएँ!

यही सब सोचते उसे शाम होगई और बगीची मे पहुँच कर, झीकती ने उस से आज की कमाई माँगी, तो कोरा सूरदास सूनी आँखों से उस की तरफ देखता रह गया। दोनों के लिये यह नया अनुभव था।

"आज एक भी पैसा नही आया? पहले ही दिन उस राक्षसी ने चौपटा पढ़ दिया? हे भगवान! हमारा क्या होगा?"

सूरदास ने अब सही-सही समझा कि वह दिन भर क्या करता रहा? उस के गले में आया कि कह दे— "उस बिचारी का क्या क़सूर, मै खुद ही बुढ़िया और परी के झमेले मे उलझा रहा।"

अचानक उस के मुँह से निकल गया—"सुबह-ही-सुबह दो आने आये थे, वे ही मैंने उस परी को दे दिये। उस बिचारी के पास कुछ भी न था !"

दिन भर उस के दिमाग़ मे परी का चक्कर रहा था। इस समय भी अनचाहे, वह परी कह गया। कह कर वह पछताया भी और झेंपा भी।

झींकती सिर्फ 'हूँ !' कह कर रह गई, पर उस के भीतर एक बवण्डर उठ खड़ा हुआ।

खाना खाते समय सूरदास ने झींकती से अचानक पूछा—

"तुम्हारी कितनी उम्र है रानी ?"

झींकती ने देखा—यह 'रानी' सत्य के ढकने का स्वर्ण-पात्र है और सचाई यह है कि उस के जीवन-जहाज़ से परी का टारपीडो टकरा गया है। उस का रोम-रोम सिहर उठा। उस ने चाहा कि वह हँस कर यह ज़हर पी ले, पर पी न सकी। उस का मन विद्रोह कर उठा—

"मेरी उम्र कितनी भी हो, मैं परी नही हूँ !"

सूरदास ने यह बवण्डर देखा और अङ्गारे को राख से ढकने की चेष्टा करते हुए कहा—"मेरे लिये तो तुम परी ही हो !"

पर झींकती के निकट आँचल का यह आवरण प्रदीप को ढक न सका।

५

भीतर-ही-भीतर आग सुलगती रही। झींकती हार रही थी, परी जीत रही थी, सूरदास खुश था। अब झींकती की 'धेली' घट कर 'पावला' रह गई थी। वह इस का अर्थ जानती थी और सूरदास को खूब जली-कटी सुनाती थी, पर नदी अपने रास्ते वही चली जा रही थी।

पहले सूरदास झींकती को अपने पास से घण्टो न जाने देता था। अब भोजन लेते ही उसे आराम करने की सलाह देने लगता है। वह जानती है, आराम किसे चाहिए, पर वह करे क्या ?

बिना मतलब अब उस पर रोज़ गालियाँ पड़ती है। 'लुटाता हूँ तो अपनी कमाई, तेरे क्या बाप का माल है ?' यह सुनना अब उस के लिये एक साधारण बात हो गई है।

उस दिन झीकती का नारी-हृदय पूर्णतया विद्रोह कर उठा—"मेरे बाप का माल नही है, पर मैं रात-दिन हाड़ जो पेलती हूँ। और आज तुम्हे परियाँ लिपटने लगी है, वह दिन याद नही जब तुम ठोकरे खाया करते थे ?"

सूरदास का पौरुष भी आज खुल कर खेल गया। उस ने अपने मज़बूत हाथों से झीकती का वेणी-सहार करते हुए कहा—"कल से यहाँ हाड़ पेलने की ज़रूरत नही

है, किसी राजमहल मे आरती उतरवाया करना। और मेरे ठोकर खाने की बात तो तुझे याद है, पर यह भी याद है कि तीन-तीन पैसों पर तब तू क्या खाती फिरा करती थी ?"

जो तार टूट कर भी महीनों से उलझ रहा था, वह आज पूरी तरह टूट गया। दूसरे दिन जब झीकती खाना ले कर चौराहे पर आई तो उस ने देखा, परी और सूरदास दोनों एक साथ खाना खा रहे है। कोई उस से नहीं बोला और न सूरदास ने उस का खाना लिया।

फिर भी नारी की बेबसी मे लिपटी झीकती, जब शाम को सूरदास के पास जाने को हुई तो उस ने देखा कि सूरदास और परी दोनों चले आ रहे हैं। यह उस के निर्वासन का बेलिखा हुक्म था!

*   *   *

अब चौराहे पर सूरदास और परी दोनों एक साथ बैठते हैं और कभी सूरदास आवाज़ लगाता है तो कभी परी। इस जोडी की खूब चर्चा है और दोनों को खूब पैसे मिलते है।

झींकती भी इसी चौराहे पर, दूसरी ओर अब बैठने लगी है। पर वह किसी से कुछ मॉगती नहीं। बिना माँगे, जो भी मिल जाता है, वही खा लेती है।

वह दिन-दिन सूखती जा रही है, पर उस का ध्यान मुसाफिरों की तरफ नहीं जाता। वह सूरदास और परी को देखती रहती है। यहाँ उसे पेट की भूख ले आती है या परी की डाह, इसे कौन बताये ?

मेरी चुटिया उस के हाथ में थी

१

तब मेरी शादी हुए कुछ ही दिन गुज़रे थे और मेरा जीवन लहङ्गे और घूघट की चार दीवारी मे सात समुद्रों की दुनिया समझा करता था। मेरा कमरा कोठी के ऊपर वाले हिस्से मे था। मेरे पति आगरा कालेज मे पढते थे, इस लिये मेरा अधिकांश समय अपने कमरे में किताबे पढते ही बीतता था।

मेरी सास-ननद मुझ से खुश थीं और सभी नौकर मेरी बात हुक्म की तरह मानते थे। बस मुझे यहाँ के भङ्गी से चिढ थी। एक तो वह ठीक समय पर न आता था और जब बेवक्त आता, तो धम-धम कर के किवाड तोड़ता चला आता। मै जब तक चटख़नी खोलने उठती, वह दस-बीस बार किवाड़ खटखटा देता।

मैं बड़े घर की लड़की थी और बड़े घर की बहू। मेरी तबियत मे नौकरों के लिये ख़ास कायदे थे, इस लिये मुझे उस का ढङ्ग बहुत बेहूदा लगता, पर मै उस से घूंघट निकालती थी—दम घोट कर रह जाती।

वह आता और इधर-उधर के रिमार्क कसता चला जाता। वह घर का पुराना भङ्गी था और बच्चे उसे ताऊ कहा करते थे। वह जानता था कि मैं उस से कुढ़ती हूँ, पर जैसे उसे इसकी परवाह न थी, वह पूरा ढीठ था।

२

उस दिन कोई बारह बजे होंगे। मै आराम कुर्सी पर लेटी 'मेरी कुरेली' का एक उपन्यास पढ़ रही थी। बाबू जी की चिट्ठी कई दिन से न आई थी। मैं आज ख़ास तौर पर डाक की प्रतीक्षा में थी।

अचानक धम-धम की आवाज़ से कोठी का ऊपर वाला हिस्सा गूञ्ज उठा। मेरी आँखों मे ढीठ बूढे भङ्गी की सूरत घूम गई। किताब हाथ से रख कर मै उठी। रेशमी दुपट्टा सँभाल कर मैने घूंघट निकाला, पर तब तक किवाड़ न जाने कितनी बार धमक उठे।

भीतर-ही-भीतर कुड़मुड़ाती मै दरवाज़े तक पहुँची और धीरे से चटखनी खोल कर लौट पड़ी। पीछे से

एक झटका लगा। मेरी चुटिया उस के हाथ मे थी और मै बरबस पीछे की ओर खिच रही थी।

यह हिम्मत ! मेरे सारे शरीर मे आग लग गई, और पूरे जोर से मैने अपनी कुहनी उसे लक्ष्य कर पीछे की ओर मारी। इसी छीना-झपटी मे मेरा घूघट खुल गया और मेरी नजर पीछे की ओर जा फिरी।

उफ ! बूढे भङ्गी का कहीं पता न था। मेरी चुटिया बाबू जी के हाथ में थी और वे मुस्करा रहे थे। न जाने कब मै उन की ओर खिच गई।

"तुम बडे खराब हो। किवाड पीटते रहे और जबान न हिली। कब आये तुम ?"

जबान हिला देता तो गामा पहलवान के दर्शन कैसे होते ?"

"तुम गामा के दर्शन कर रहे थे और मै बूढ़े भङ्गी को पीटने की तैयारी। चलो खैर हो गई !"

पता नही वे क्या समझे, पर जोर से हँस पडे।

अञ्जनहारी

१

गेलीलियो ने अपनी वैज्ञानिक प्रतिभा से दूरबीन का आविष्कार किया, जिस से हमे दूर की चीज भी पास-सी दिखाई देती है। मै सोचती हूँ, गेलीलियो को इस यन्त्र के आविष्कार मे बरसों लगे होंगे और न जाने कितनी रातें उस ने इस चिन्ता मे जाग कर बिताई होंगी। आखिर उसे यह बेचैनी क्यों थी कि दूरबीन बने ?

ऊपर से तो यह सवाल एक मजाक है, पर वाकई हरेक आविष्कार के पीछे उस की आवश्यकता तो सिद्ध होनी है। तो दुनिया चाहती थी कि दूर की चीज़े भी दिखाई दे। उसे इस के लिये आकुलता थी और इस आकुलता ने वैज्ञानिक के मन को अपील की, वह जुटा और एक चीज़ आई।

मन प्रश्नों की खान है। वहाँ नये-नये प्रश्न उमड़ते हैं। तो मनुष्य में दूर की चीज़ देखने की यह आकुलता क्यों उपजी ? उस के आस-पास जो कुछ है, उसे तो वह अभी नहीं देख पाया। हमारे चारों ओर, सुख-दुख की धूप-छाँह में, जो रात-दिन सृष्टि-विनाश का अभिनय हो रहा है, उस की ओर से आँखें बन्द कर के हम चन्द्रलोक की सैर को क्यों आकुल हैं ?

मेरे अपने-ही घर में इस मास जो कुछ हो गया, उस पर यों ही मेरी निगाह चली गई। नहीं तो कहाँ इस तरह का लेखा-जोखा कोई तैयार करता है ?

एक अञ्जनहारी ! सृष्टि के अनन्त प्राणियों में यह भी एक उड़ना जीव है। वह रात-दिन हमारे पास उड़ती है। हमारे बालक तक उसे जानते हैं, पर हम नहीं जानते कि उस के नामकरण का इतिहास क्या है ? बस वह अञ्जनहारी है, पीली बर्रं का लाल-घुसरैला ज़रा बड़ा-सा संस्करण। बर्रं काटती है, वह आम तौर पर नहीं काटती। हमारे घरों में अपने मिट्टी के घर बनाती है। जन्म-जन्म से बूढ़ी माएँ और नानियाँ बच्चों को पढ़ाती आई हैं कि जो इस घर को तोड़ेगा उस की आँख में अञ्जनहारी निकलेगी।

अञ्जनहारी ! बेचैन करने वाली आँख की एक फुन्सी। एक जीता जागता जीव और एक फुन्सी; दोनों का यह

एक नामकरण कैसे हुआ, कब और किस आचार्य के द्वारा हुआ, इसे शायद कोई नहीं जानता।

मैं अपने पलङ्ग पर पड़ी फ्रेञ्च ग्राम्य-गीतों का एक संग्रह पढ रही थी कि एक अञ्जनहारी झरोखा लाङ्घ कर कमरे मे आगई—भर्र घू घू भर्र। यों ही मेरा ध्यान उधर चला गया। जमीन मे गड़े धन को जैसे भेदिया चोर टटोलता है, वैसे ही वह कमरे का कोना-कोना देख चली। कोई आध घण्टे मे उसकी यह 'सर्वे' समाप्त हुई और एक स्थान उसे पसन्द आ गया। यह झरोखे के ठीक नीचे था। पसन्द इस माने मे कि इस पर वह काफी देर तक खोज-पडताल करती रही और उड़ गई।

मुझे अपने पर झुंझलाहट आई कि मैंने यों ही इतनी देर उसे देखने मे ख़राब की, पर दूसरे दिन भोजन करके जब मैं फिर लेटी, तो देखा कि ठीक उसी जगह मिट्टी का एक गोलघर तैयार हो रहा है। मस्जिद के गुम्बद-सा एक गोलघर और बीच मे छेदनुमा दरवाजा।

२

जीवन मे अनेक कोठियाँ बनते देखने का अवसर मिला है और दूसरे भवन भी। बचपन मे पिता के घर

और जवानी में पति के यहाँ, अब भी कहीं-न-कहीं 'टाँकी' लगी ही रहती है फिर इस छोटी-सी अञ्जनहारी के इस गृह-निर्माण मे ऐसा क्या आकर्षण था कि फ्रेंच ग्राम्य-गीतों के उस मद भरे रस-प्रवाह को छोड़ कर मन उस मे जा उलझा ?

मकान छोटा हो या बड़ा उस के निर्माण मे कितने आदमी भाग लेते हैं ?

"माँ ! मेरा वह रेशमी गाउन ला दे, मैं अपने निष्ठुर प्रेमी से मिलने जाऊँगी।"

बीमार बेटी ने माँ से कहा, तो वह बोली—

"बेटी ! तू सप्ताह भर से खाट पर पड़ी है। डाक्टर ने उठने को भी मना कर दिया है और तू उतनी दूर जायेगी ?"

माँ की चिन्ता बेटी ने देखी और उसे निश्चिन्त करते हुए कहा—

"माँ, तू मेरी चिन्ता न कर। इन डाक्टरों की दवा से मै अच्छी न हूँगी। अपने प्रेमी से बिना मिले, मुझे चैन न पड़ेगी। तू मुझे जाने दे माँ, ला मेरा रेशमी गाउन और चमकीली धारी का हैट।"

प्रेमी कितना निष्ठुर है कि बीमारी मे भी मिलने नहीं आया, पर उस बेचारी को इस का ध्यान नहीं है। वह उस से मिलने को आतुर है। कितना रस-मय है यह फ्रेञ्च

ग्राम्य-गीत। और मै फिर सोचने लगी—मकान छोटा हो या बड़ा उस के निर्माण मे कितने आदमी भाग लेते है ? कोई नक़्शा बनाता है, कोई सामान जुटाता है और कोई उस सामान का उपभोग करता है। पर यह अञ्जनहारी इकली ही सब का भार सँभाले जीवन मे चल रही है !

मनुष्य समझता है वह बुद्धि का भण्डार है, पर इस छोटे-से प्राणी मे कितनी चेतना है। कैसे सोचती है यह सब बाते ? क्या इस के मन मे भी मानव के सस्कार है ? किसी दिन धूप और वर्षा मे झकझोर हो, इस ने चाहा कि एक मेरा भी घर हो, और फिर उस घर बनाने के साधनों पर विचार किया, उन्हे जुटाया और आप जुटी।

मै सोच रही थी, वह काम कर रही थी। इतने मे वह जाने कितनी बार आई, गई। वह जाती, कहीं से ज़रा-सा गारा अपने मुँह मे लिये आती, घर पर बैठती और चारों ओर देखती कि कहाँ नीचा है, वहीं उसे लगाती और फिर देखती कि ठीक लग गया है या नहीं ?

अब घर तैयार हो गया। वह उस के मुँह पर आ कर बैठी, धीरे से अपना डङ्क उस ने उस के भीतर डाला और अत्यन्त सावधानी से उसे चारों ओर भीतर घुमा कर देखा कि कही ऊँच-नीच तो नही है। उस की सतता इतनी सूक्ष्म थी कि जैसे गुप्तचर शत्रु के 'वार-रेकर्ड-ऑफिस' मे घुस कर टोह ले रहा हो !

मैं उस की सतर्कता पर विचार कर ही रही थी कि वह एक लम्बा-सा हरा कीड़ा मुँह और पैरों मे दबाये चली आ रही है। धीरे-धीरे उसे उस ने अपने मकान में पहुँचा दिया, इतनी सफाई से कि दरवाजे के छोटे से छेद की दीवारे कही भी उसे छू न गई।

मै हँस पडी—अच्छा, यह आप का टोस्ट है?

थोडी ही देर मे वह फिर गारे की एक फुटकी लिये आई और उस छेद पर बैठ गई। अब यह क्या कर रही है? मै जान न सकी और ज्यों ही वह उड़ी कि मै उठी। देखा वह दरवाजा बन्द कर रही है।

अरे, वह कीड़ा न था, इस का अण्डा था! पर वह बच्चा कब बन जायेगा? और जब बन जायेगा, तो यह दरवाजा फोड कर उसे उड़ा ले जायेगी, पर तब तक यह खुद कहाँ रहेगी? इसे कैसे पता है कि इतने दिन मे बच्चा बनता है? मालूम भी है, तो उतने दिन यह किस पञ्चॉग से गिनेगी? हमारे कमरे से तो एक दिन के लिये भी कैलेण्डर गुम हो जाये तो सौ बार तारीख पूछनी पड़े। दीवार का कैलेण्डर अलग है, टेबिल का अलग, पर यह स्मृति के सहारे ही उतने दिन पार कर लेगी? इस के पास समय की बहती धार को नापने का पैमाना क्या है? मनुष्य जिन जीवों को अपने सामने कुछ भी नहीं समझता, कितनी ही बातों मे वे उस से कितने आगे है?

यही सोचते २ मै सो गई, पर स्वप्न मे भी मुझे दीखा कि अञ्जनहारी अपना अण्डा पैरो मे दबाये उडी आ रही है।

३

"अरे, अब क्या कर रही है तू ?"

दूसरे दिन भोजन कर के जब फिर मै पलङ्ग पर आई, तो देखा अञ्जनहारी एक नया घर, पहले घर से मिला कर बना रही है। मुँह से अचानक निकल पडा "अरे, अब क्या कर रही है तू ?" पर उसे किसी की बात सुनने का अवकाश न था, वह अपने काम मे जुटी रही।

दो दिन मे वह घर भी बन कर तैयार हो गया और तीसरे दिन उस मे भी उस ने वैसा ही अण्डा रख कर, उस का मुँह बन्द कर दिया। कहाँ से लाती है यह अण्डे ? मैंने कोठी की छत पर चढ कर देखा, वह किधर जाती है, पर कुछ पता न चला। हाँ, यह पता चल गया कि गारा वह मेरे बाग़ के गड्ढे से लाती है। वहाँ जाकर मैंने देखा, गड्ढे का गारा सूखा-सा है, पर अञ्जनहारी छाँट कर, भीतर से मुलायम लाती है। कितनी चतुर है यह अञ्जनहारी ?

लगभग पन्द्रह दिन मे अथक परिश्रम कर के उस ने ६ घर बनाये और उन मे ६ अण्डे बन्द किये। मै उस के

बारे में अब इतनी उत्सुक थी कि सब कुछ जानना चाहती थी, पर बेचैन थी कि जान न सकी।

अब उस ने सातवाँ घर बनाया और मैंने देखा कि वह उस पर 'फिनिशिङ्ग-टच' कर रही है, तो क्या और अण्डा लावेगी ? कितने अण्डे देती है यह अञ्जनहारी ? यह खुद कहाँ रहती है ? इस ने यह अण्डे कहीं दे रक्खे है या दे रही है ? पर अण्डे देने का कोई समय नियत है या जब मकान तैयार हो जाता है और यह चाहती है, तभी अण्डा दे देती है। हे भगवान ! जीव और माया के इन्द्रजाल से भी बढ़ कर है यह अञ्जनहारी का इन्द्रजाल !

"आज चाय-वाय मिलेगी या अञ्जनहारी फिल्म ही चलता रहेगा ?" मैंने चौंक कर देखा लाला जी खड़े मुस्करा रहे है। आश्चर्य से मैंने देखा, चार बज गए। लाला जी का स्वभाव ऐसा है कि मेरी खुशी में अपनी ख़ुशी समझते हैं। वे तीन बजे चाय पीते है, पर उन्हे पता है कि आज-कल मै अञ्जनहारी में उलझी हूँ, चार बजे तक भी चाय ऑफिस में न पहुँची तो उठ कर आये, पर नाराज़ होना तो जैसे उन्हे आता ही नहीं। मुझे अपनी लापरवाही पर खेद हुआ और जल्दी से मै उठी, पर वाकई मेरे रोम-रोम मे आज अञ्जनहारी रमी थी, उसी मे डूबे हुए मैने कहा—

"लाला जी ! यह अञ्जनहारी तो एक पूरी पुस्तक है और पुस्तक क्या एक पूरी दुनिया है।" हंस कर बोले—"पुस्तक, दुनिया और ब्रह्माण्ड तो मुझे पता नहीं, पर हमारी कहानी-लेखिका जी के लिये एक मजेदार प्लॉट जरूर मालूम होता है।"

चाय पीकर मैं फिर पलङ्ग पर आ गई। गरमी लग रही थी, मैंने पंखा खोल दिया और लेट गई। पंखे की घूं-घूं मे एक और घू-घू आ मिली। मैंने दम साध कर देखा, अञ्जनहारी वही हरा अण्डा पैरों मे उलझाये चली आ रही है, पर कमरे मे आते ही आज उसे उस वातावरण का सामना पडा, जैसे जहाज को टारपीडो की टक्कर का या नाव को भौंर का करना पडता है।

अञ्जनहारी ओवरलोडेड और बिजली के तेज पंखे की हवा से भरा कमरा। उसे ऊपर से नीचे आना था, पर नीचे से हवा का झोंका उसे ऊपर फेंकता था। अञ्जनहारी के पंखो पर उस के अण्डे का बोझ तुल रहा था और अण्डे देने की कमजोरी का असर भी सम्भवतः उस पर होगा ही, आखिर वह जच्चा थी।

जी मे आया, पङ्खा बन्द कर दूँ और वह आसानी से अपने घर मे उतर आये, पर जवानी कौतुक के प्रति सदा उत्सुक रही है। देखूं तो इस वातावरण को, अच्छे तैराक की तरह धार को चीर कर यह कैसे उतरती है।

नीचे झुकीं। उफ, हरा अण्डा और अञ्जनहारी कटे पड़े थे। उस के दो टुकड़ों को जोड कर मैंने अपने हाथ पर रख लिया, पर यह शव के प्रति मेरे प्यार का प्रदर्शन था।

जीवन में अनेक बार मुझे जच्चा और बच्चा को एक साथ मरे देखने का अवसर मिला था, पर मेरे मन में वेदना की इतनी फुहारें कभी न पड़ी थी, क्यों? यह मैं नहीं जानती।

४

"हाँ, तो लाहौर से आज कितनी स्यापे वाली बुला दूँ?"

लाला जी ने मजाक करते हुए शाम को पूछा। उन्हे शायद प्रबोध ने कह दिया था कि मैं आज अञ्जनहारी को हाथ पर रक्खे रोती रही।

अपने भारी दिल को सँभालते हुए मैंने कहा—"कैसी बात कर रहे हो? मेरे भरे पूरे घर मे कम्बख्त स्यापे वाली क्यों आवें?"

"आखिर आप की अञ्जनहारी जब मर गई है तो उस की आत्म-शान्ति के लिये लाहौरी स्यापे का समवेदना-सन्देश क्यों न ब्राडकास्ट हो?"

सब हँस पड़े और मेरी मुस्कान भी बिखर पड़ी।

"लाला जी! कितनी बडी दुर्घटना हुई यह कि बिचारी ने एक दुनिया बसाई और वह उस का तमाशा देखने से पहिले ही चल बसी। मरते-मरते भी उसे अपने बच्चों का ध्यान रहा होगा।"

"मेरी राय यह है कि मै आज एक प्रेस कान्फ्रेंस बुला दूँ और आप उस मे इस दुर्घटना पर एक वक्तव्य दे दे।"

लाला जी सहृदय आदमी है, पर वे मेरी भावुकता से परिचित है। वे चाहते थे कि मै हँस पड़ूं और मेरा दु:ख-भार हल्का हो।

दूसरे दिन जब भोजन कर के मै अपने पलङ्ग पर लेटी तो कमरे का वातावरण मुझे सूना-सूना लगा; जैसे देखने को वहाँ अब कुछ न था। कमरा गरम हो रहा था, पर स्विच दबाने को मेरा जी न चाहा, उस से मेरा मन जला हुआ था।

पंखे से हट कर मेरा ध्यान अञ्जनहारी के घर की ओर चला गया। छः घर ज्यों के त्यों बन्द थे और सातवें घर का मुँह खुला था। मुझे ऐसा लगा कि कोई दुष्ट डाकू किसी यात्री की जीभ काट डाले, वह दूसरे यात्रियों को सहायता के लिये पुकारना चाह कर भी पुकार न सके और वेदना से कराह कर सिर्फ मुँह खोले खड़ा रह जाय।

गोल गुम्बद-सा घर और चीनी कटोरे की तली सा रवेदार उस का द्वार, दोनों शून्य भाव से जैसे आतुर हो अञ्जनहारी की प्रतीक्षा कर रहे थे। यह प्रतीक्षा इतनी आतुर क्रन्दन से परिपूर्ण थी कि मै छोटा-सा शरीर धारण कर सकती तो निश्चय ही मक्खी बन कर उस घर मे बैठ जाती। मै पलङ्ग से उठ कर घर के पास आ खडी हुई।

छः घर वन्द थे और एक खुला, खुले घरसे मेरा ध्यान हट कर उन वन्द घरों की ओर चला गया। इन मे हरे-हरे कोमल छ अण्डे हैं। तुरन्त मन मे एक प्रश्न उठ चला—ये अण्डे कब बच्चे बनेंगे ? पुरवैया बवण्डर मे बिजली कौंद गई और मुझे रोमाञ्च हो आया—वे बच्चे इस बन्दी-गृह से निकलेंगे कैसे ? अञ्जनहारी होती तो वह धीरे से समय पर 'मुँह का परत' उतार देती और अपनों को सहारा और चुग्गा दे कर उड़ा ले जाती, पर अब तो दरवाजा बन्द है। तो क्या ये यों ही घुट कर मर जायेंगे ? एक दम छः नन्हे-नन्हे प्राण !

मुझे अपने जीवन की एक और दुर्घटना याद हो आई। क्वेटा मे जब वह भूकम्प आया, मै वहीं थी। मै अपने कमरे मे पडी सो रही थी और मेरी बहिन की छोटी लडकी रमा भी मेरे पास थी। अचानक दुनिया हिली और तमाम कमरा सिमट कर मुझ पर आ गिरा। वड़वडाहट में दिमाग़ की चेतना-शक्ति जैसे सो गई। घण्टों बाद मै

समझ सकी कि क्या हुआ यह ? मैंने हाथ पैर फैलाये, छत का गाटर एक दीवार पर तिरछा टिका था और उस के नीचे वह ज़रा-सी जगह बची थी, जहाँ मैं हूँ। मेरे पास ही पड़ी रमा सिसक रही थी। दिखाई तो कुछ देता ही न था। अन्दाज़ से उठा कर मैंने उसे छाती से लगा लिया। उस ने पानी माँगा अब मैंने ठीक-ठीक अपनी स्थिति समझी और बाहर से भीतर तक मैं सन्न हो गई। मौत मुँह बाए सामने खड़ी थी—कोई रास्ता न था। मुन्नी पानी माँग रही थी और मेरी आँखों से पानी बरस रहा था। न जाने कब तक वह तड़पी और फ़िर धीरे-धीरे शिथिल होने लगी। उसका शरीर ठण्डा होने लगा। मै गला फाड-फाड़ कर चिल्लाई, पर आवाज़ वहीं गूंज कर रह गई।

तीसरे दिन मुझे कुछ लोगों ने मलबा हटा कर निकाला, पर मुन्नी के जीवन की ज्योति उस अन्धकार मे लीन हो चुकी थी। रमा की वह तड़पन, चिल्लाहट और बाद का मुरझाया हुआ चेहरा मेरी आँखों मे घूम गया। मेरा रोम-रोम सिहरन से भर गया। क्या यह छहों नन्हें भी रमा की तरह घुट कर मर जायेंगे ?

तो मै क्या करूँ ? मेरे हाथ कुछ करने को बेचैन हो उठे और मैं अपना नेहरना उठा लाई। मैंने चाहा कि घर के मुँह पर जो हल्की-सी परत है, वह धीरे से उतार दूँ और टार्च से भीतर झॉकूं कि इतने मे मेरी नौकरानी आगई।

"क्या कर रही हो बहूजी !"

"हीरा ! इन मे बच्चे बन्द हैं और इनकी माँ मर गई। मैं उस का मुँह फोड़ कर उनके निकलने की जगह कर दूँ ?"

"ना बहूजी, आप को क्या पता कि अण्डा कब पकेगा ? कच्चे अण्डे में जरा भी हवा लग गई, तो बस फिर उस मे जी ही न पड़ेगा !"

मैंने नेहरना रख दिया, पर यह कैसे पता चले कि अण्डा कब पकेगा ? अपने बाग़ के माली से मैंने पूछा पर वह भी न जानता था। एक शहद बेचने वाला आगया। उस से भी पूछा और वह भी गुम। मैंने अपना ड्राइवर भेज कर एक अण्डा बेचने वाले को बुलाया और उस से भी इस बारे मे पूछा। बहुत देर मे तो वह मेरी बात ही समझा। तब कुछ सोच कर बोला—"मरेंगे तो मर जाने दो, आप को इतनी परेशानी क्यों है बहूजी ?" जिस ने जीवन मे हजारों अण्डों का खुद नाश्ता कर लिया और लाखों बेच डाले, उसे मै अपनी बेचैनी का अर्थ कैसे समझाती ?

"माली ! चार-पाँच अञ्जनहारियां पकड़ कर ला। उन के पंख मत तोड़ना। मै तुझे इनाम दूँगी !"

न जाने वह कैसे तीन अञ्जनहारी पकड़ लाया। मैंने कमरे के तमाम झरोखे बन्द करके, बिजली जलाई और उन्हें कमरे में छोड़ दिया। अपने पलङ्ग पर, साँस रोके, चुपचाप, बिना हिले-डुले, मैं उन्हे देखती रही। न जाने कितने चक्कर उन्होंने काटे, पर वह घर जैसे उन्हें दिखाई ही नही देता था। उन्हे असल मे अपने बाहर निकलने की धुन थी।

मै कैसे अपनी बात इन्हे समझाऊँ? वही युग अच्छा था, जब पशु-पक्षी भी मनुष्य की बात समझ लिया करते थे। काश! एक पल के लिये वह युग लौट आए और इन अञ्जनहारियों से मै अपनी बात कह पाऊँ? मैंने अपने माली को फिर बुलाया। उस ने एक अञ्जनहारी पकड़ कर उन बन्द घरों पर टिकादी, पर यह तो एक बाग़ी को डरा कर राजभक्त बनाना था। मैंने दुःखी होकर झरोखे खोल दिये, और वे उड़ गईं।

अब मैं क्या करूँ?

दूसरे दिन मैंने अपने माली को बुला कर कहा कि दो-तीन दिन मे वह मुझे बताये कि इस तरह के घर कहाँ-कहाँ लगे हैं? तीसरे दिन उसने मुझे आठ घरोंकी सूचना दी। मै उन मे से तीन खुद जा कर देख आई और मैंने माली से कहा कि वह देखता रहे कि इन पर कब-कब अञ्जनहारी आती है और क्या करती है? वह मुझे शायद

झकी समझ रहा था, पर मेरा नौकर था। रोज़ बेचारा सब घरों पर चक्कर काट आता।

"बहूजी, किसी घर पर भी अञ्जनहारी नहीं आती !"

तीन दिन के बाद यह उस की रिपोर्ट थी।

"तुम देखते रहो ! कभी तो उन अण्डों के बच्चे बनेंगे और उन की माएँ आएँगी ?" यह मेरे इरादों की घोषणा थी। पर माली की एक बात ने मेरे हौसले ठण्डे कर दिये।

"सब घर एक साथ ही थोड़ा बने है कि सब के बच्चे एक साथ निकलेगे ! जब उन घरों के बच्चे पूरे हों तो क्या पता, तब तक इन घरों के बच्चे घुट कर मर भी जाएँ !"

फिर ये छः प्राण कैसे बचे ? मुझे कौन बताये कि वे बिचारे भीतर पल रहे है या मर गये ! बीसवी सदी का मनुष्य बडा ज्ञानी है। जल, थल, नभ मे उस का झण्डा लहरा रहा है, सभी यह कहते है। पर क्या खाक ज्ञानी है, जब उसे अञ्जनहारी के बारे मे ही कुछ ज्ञान नहीं है !

मुमकिन है, इस पर किसी पुस्तक मे कुछ सूचना हो। मैंने बड़े-बडे प्रकाशकों के सूचीपत्र मँगा देखे। जीव-जन्तुओं पर १०-१२ पुस्तकों के नाम थे। मैंने सब को वी० पी० से भेजने के लिये लिख दिया है, पर लाला जी कह रहे थे कही कुछ न मिलेगा, तुम यों ही परेशान हो रही हो। फिर भी पुस्तके तो पढ़ूगी ही।

घर में जो आता है उसी से पूछती हूँ, पर कोई कुछ नहीं जानता। कभी-कभी लाला जी झल्ला पड़ते है—"हर समय वही पागलपन!" पर मैं क्या करूँ? मेरे दिमाग़ मे तो रात-दिन ये बच्चे उलझे रहते है और आँखों मे घूमता रहता है रमा का वह मुरझाया हुआ चेहरा। शायद किसी पुस्तक मे कुछ मिल जाये, पर पुस्तकें जाने कब आएँगी? तब तक उन बिचारों का क्या होगा? कौन जाने, वे पल रहे है या मर गये?

वह भीख माँगती आई !

१

"मैं कहाँ रहूँ, मैं कहाँ बसूँ ,
न ये मुझ से खुश, न वो मुझ से खुश !
न किसी की आँख का नूर हूँ ,
न किसी के दिल का क़रार हूँ ॥"

जीना झूमता, गाता चला आ रहा था। वह वायलिन का मास्टर है और रोज़ नई चीजे सुनाता है। पता नहीं उसे ऐसी-ऐसी चीज़े मिल कहाँ से जाती है।

"ओह ! मेरी ललिता भी यह ग़ज़ल अक्सर वायलिन पर गाया करती थी। कम्बख्त के गले मे कुछ ऐसा दर्द था कि सुन कर दिल भर आता। उस की भी आँखें बरस पड़तीं। पता नहीं अब कहाँ होगी ?"

"कौन है वह ललिता, भाभी जी ! उस का वायलिन हमें भी सुनवादो । मुमकिन है वह हमारे वायलिन पर रीझ कर हम से निकाह पढ़ने को तैयार होजाए !"

"उँह ! मुँह धोलो पहले, निकाह क्या करोगे ? उस के चप्पलों पर पालिश करने का ही अधिकार मिल जाए तो लाहौर के रईसज़ादों से तुम्हारी किस्मत अच्छी समझी जाए !"

"हूँ ! ऐसी हैं ललिता देवी ?"

"हैं का तो पता नहीं, पर थी ऐसी ही । बेचारी को रोटियों का भी सहारा न था, जब वह मेरे पास आई ।"

"अच्छा, उसे रोटियों का सहारा भी न था और उस के पीछे पागल फिरते थे, लाहौर के रईसज़ादे ?"

जीना एक चञ्चल युवक है, कहानियों का शौकीन । ललिता का इतिहास सुनने को मचल पड़ा ।

*　　　　*　　　　*

पिता जी को मरे तब कुछ ही दिन हुए थे और स्टेट का सारा काम भाई महावीर के हाथों मे था । मै भी उस के आग्रह पर कुछ दिन के लिये लाहौर आई हुई थी । भाई को खाने-पीने का बहुत शौक था, इस लिये मिसरानी के साथ मुझे भी रोज़ चूल्हे पर सिकना पड़ता था ।

———

उस दिन कोई १२ बजे होंगे । मैं चूल्हे से उठ कर अभी आई थी और पसीने-पसीने हो रही थी कि एक भिखारिन युवती आकर बरामदे में खड़ी हो गई ।

"बीबी जी ! मुझे बहुत भूख लगी है । दो दिन से मैंने कुछ नही खाया । आपकी बड़ी कृपा होगी, यदि आप मुझे भोजन करादे ।"

उस की भाषा और कहने का ढङ्ग देख कर मै चौंक पड़ी, पर गरमी से दिमाग झल्लाया हुआ था । रुखाई के साथ मैंने कहा—

"अरे, पढी-लिखी मालूम होती है तू तो ! भीख माँगती फिरती है, कही नौकरी क्यों नही कर लेती ?"

"बिगड़े समय का कौन साथी है बहिन ? कभी हमारे ही यहाँ नौकर रहा करते थे, आज कोई बात नहीं पूछता । तुम्ही रख लो बहिन !

कोई वेतन नहीं माँगती, बढ़िया कपडे नहीं माँगती, सिर्फ दो रोटियाँ चाहती हूँ । तुम्हारे पैरों पड़ती हूँ बहिन ! मुझे अपने पास रख लो, तुम्हारी बड़ी सेवा करूँगी !"

मैंने भीतर से माँ को बुलाया ।

"माँ, तुम इस छोकरी को रख लो । यह बेहद गरीब है, अच्छे दिन देख चुकी है, होशियार है, मै चार दिन मे चली जाऊँगी, तुम्हे इस की मदद मिलेगी और इस के भी दिन कट जायेगे !"

जब वह बाथरूम में नहा कर, मेरी साड़ी पहने बरामदे में आई, तो मुझे वह एक राजकुमारी-सी लगी, पर उस की आँखों में इतना शील और चेहरे पर बेकस ग़रीबी थी कि मेरा दिल भर आया ।

दोपहर मे उस ने माँ के पैर दबाये और शाम को खाना बनाया । खाना इतना उम्दा कि सब ने तारीफ की और चूल्हे पर वह इस तरह तिरछी बैठी कि कोई उस का मुँह न देख सके ।

भारत का बुढ़ापा शील-सदाचार का समर्थक है। माँ को उस का यह ढङ्ग बहुत पसन्द आया और पहले ही दिन वह माँ के लिये अपनी बेटी हो गई ।

दूसरे दिन सुबह जब हम उठे तो ललिता दो कमरे ठीक कर चुकी थी । इधर की मेज़ उधर, उधर की इधर, वह तस्वीर यहाँ, वह वहाँ । कमरे नये-से चमक रहे थे ।

रसोई मे आज उस ने नई-नई चीजें बनाई। दोपहर मे फिर उस ने अम्माँ की सेवा की और शाम को वह जब नन्हीं को अँग्रेज़ी पढ़ाने बैठ गई तो हम सभी को आश्चर्य हुआ ।

इस तरह ललिता तीन ही दिन में, माँ के लिये रसोइया, प्राइवेट सेक्रेटरी, अध्यापिका और न जाने क्या-क्या बन गई ।

२

उस दिन जब माँ ने कहा—"ललिता बेटी ! अब मैंने तेरे सारे गुण देख लिये। अब तू अपना वेतन तै करले" तो ललिता माँ के पैरों से लिपट कर रो पड़ी।

"माँ ! मैं भीख माँगती यहाँ आई थी और अब रानियों की तरह रह रही हूँ। माँ, अगर तुम मुझ से इस तरह की बातें करोगी तो मैं अपनी झोली उठा कर चल दूँगी।"

माँ का दिल लोट-पोट हो गया और उस ने ललिता को छाती से लगा लिया।

"बहिन जी ! तुम्हारे हाथ-पैर दबा दूँ ?"

ललिता माँ के पैर दबा कर उठी थी कि मुझे आ लिपटी। काम करने की उसे धुन थी, थकान जैसे उस के शरीर को होता ही न था। मैंने उसे मना किया—"मैं क्या बुढ़िया हूँ जो हाथ-पैर दबवाऊँ ?"

पर वह लिपटी जा रही थी। पीछा छुड़ाने को मैंने कहा—"अच्छा, हाथ-पैर नहीं दबवाती, गाना सुना।"

"क्या सुनाऊँ ? पक्का गाना आप को पसन्द है ?"

"अच्छा, पक्का गाना भी जानती है, पर बजाना भी जानती है कुछ ?"

ललिता का गला भर आया। नीची गरदन कर के, मेरी चादर का शल निकालते हुए ललिता ने कहा—"अब तो कुछ भी नहीं जानती बीबी जी ! पर कभी सब कुछ जानती थी।"

और व्यथा का भार न सँभाल कर, वह मेरे पैरों के पास लुढ़क गई। मेरा भी दिल भर आया और मैंने उसे अपनी तरफ खींच कर धोती से उस के आँसू पोंछ दिये।

पलङ्ग से उठ कर मैं भैया का वायलिन उठा लाई। ललिता वायलिन हाथ मे लिये कई मिनिट गुमसुम बैठी उसे देखती रही; जैसे अपने अतीत की एक झाँकी ले रही हो।

मेरा मन ललिता के उर मे उमड़ी आँधी मे झकझोर हो उठा, पर जब उस ने अपने सधे हुए हाथ से पहली ही बार 'बो' वायलिन के तारों पर फेरा, तो मुझे रोमाञ्च हो आया। ऐसा वायलिन तो वाकई महावीर भी न बजाता था।

"गा भी तो कुछ, बजाने में तो महावीर से भी ज्यादा होशियार है।" खुश होकर अम्माँ ने कहा।

मीरा के जीवन की सूनी पडी रे, सितार !
कितनी गहरी नींद में सोगई तारों की झङ्कार !

मीरा का पद ललिता की स्वर-लहरी के साथ मिल कर जैसे सारी दिशाओं मे गूञ्ज उठा। जब उस ने वायलिन हाथ से रक्खा तो मैंने देखा कि भाई महावीर पर्दे के पीछे खडे, नशीली आँखों से ललिता को देख रहे है। ललिता ने भी एक वार उधर देखा और नीची ऑखे कर लीं।

भैया रसिक स्वभाव के आदमी थे। अब वे ललिता के साथ बातचीत करने को वेचैन थे, पर एक तो मेरा पहरा था, दूसरे ललिता में कहीं चञ्चलता न थी। बेचारे लाचार थे।

३

"ललिता ! तेरे घर में और कोई नहीं है ? तेरा मकान कहाँ है बेटी ?" एक दिन पैर दबवाते हुए माँ ने पूछा। ललिता फिर रो पड़ी।

ऑखें पोंछ कर उस ने कहा—"माँ ! मेरे पिता कराँची मे कागज का बिजनेस करते थे। वे बहुत ऊँचे विचारों के आदमी थे। उन्होंने विलायत की पढ़ाई के लिये पन्द्रह हजार रुपये नकद देकर एक होनहार युवक के साथ मेरा विवाह किया था। मेरे विवाह के कुछ ही दिन बाद पिताजी के साथ एक जबर्दस्त विश्वासघात हो

गया। उन का सारा व्यापार चौपट हो गया और एक दिन उन्होंने आत्म-हत्या कर ली। जो कुछ बचा था वह सब कर्ज़ख्वा ले गये। न जाने कैसा कर्ज़ था ? इसी रञ्ज मे घुल-घुल कर मेरी माँ भी मर गई।

विलायत मे उन बाबू साहब ने एक मेम साहब के साथ शादी कर ली और ख़र्चें के भार से बचने के लिये मुझे कत्ल कराने की कोशिश की। तब मैं अपनी जान ले कर भागी और जाने कहाँ-कहाँ के धक्के खा कर यहाँ आ पहुँची। मैंने पहले जन्म मे कुछ पुण्य किये थे, जो मुझे आप के दर्शन हो गये। और वह फिर रो पड़ी।

अब ललिता काफी निखर गई थी। रूप उस पर जैसे स्वर्ग से टूट पड़ा था। अब उस मे वह दीनता न थी। उस की आँखों मे नशा और पिण्डलियों मे थिरकन थी, पर उस के स्वभाव मे शील और सेवा भाव की जो विभूति थी, वह पहले से भी बढ़ गई थी, इस लिये माँ और घर के दूसरे आदमियों के दिल में तो जैसे उस ने घर कर लिया था।

सिर्फ कभी-कभी मेरे मन मे सन्देह की एक छाया कही से आकर झाँक जाती। वह भी ख़ास कर तब, जब वह भैया की ओर भारी पलकों से एकटक देखती और उस के रोम-रोम मे जैसे एक नशा भर जाता।

एक दिन ललिता घर मे न थी, मुझे सन्देह हुआ। मैंने देखा, वह भैया के ऑफिस मे खडी, टेलीफोन पर बातें कर रही है। मुझे देख कर उस ने रिसीवर हाथ से रख दिया।

"क्या कर रही थी तुम यहाँ ऑफिस मे ?"

झिड़की के स्वर मे मैंने उसे घूरते हुए पूछा और साकार दीनता की मुद्रा मे उस ने कहा—

"बीवी ! मै फोन देख रही थी। मेरे पिता जी के दफ़्तर मे भी दो फोन थे।" और उस की पलके भीग गईं। मेरे मन पर भी आज एक गम्भीर चोट पड़ी—मै ख़ामख़ा बेचारी पर सन्देह करती हूँ। उस ने अच्छे दिन देखे है। वह बडे बाप की बेटी बन कर रही है। बुरे समय मे भी अपने को कहाँ तक दबाये ?

उस दिन से ललिता को घर मे पूरी स्वतन्त्रता मिल गई और वह हमारे परिवार की एक सदस्य ही होगई।

अब वह अम्मॉ के कमरों के साथ भैया के कमरों की भी देख-भाल करने लगी और उसे भैया से बाते करने का भी अवसर मिलने लगा। भैया को समय पर चाय देना, खाना खिलाना, पान देना और उन का बिस्तर ठीक करना, सब काम ललिता ने अपने हाथ मे ले लिये और खूबी यह, इस से मॉ की सेवा और घर का प्रबन्ध इन मे कहीं भी उसने कमी न आने दी।

आज-कल ललिता घर भर की ऑखों का तारा थी !

४

भैया के बड़े सेक्रेटरी बाबू रामनाथ सरकारी सर्विस मे चले गये थे और उन की जगह एक अनुभवी आदमी की ज़रूरत थी। पिता जी की मृत्यु हुए, तब थोडे ही दिन हुए थे और भैया कतई अल्हड़ थे !

माँ ने राजा सुरेशसिंह को पत्र लिखा कि स्टेट के लिये एक सेक्रेटरी चाहिए। आप अपना परखा हुआ कोई आदमी दें, क्यों कि ऐसा न हो कि भैया किसी ग़लत आदमी के चक्कर मे पड़ जावें।

राजा साहब पिता जी के पुराने मित्र थे और उन की सौतेली माँ से मुक़दमा लड़ कर जब से पिता जी ने राजपुर की रियासत भी उन्हे दिलादी थी, तब से राजा साहब उन्हे अपना भाई मानने लगे थे।

माँ का पत्र पाकर राजा साहब ख़ुद आये और अपने विश्वसनीय मित्र और मन्त्री मि० बलवीरचन्द्र को यहाँ छोड़ गये। जाते-जाते भैया से बोले—"इन्हे तुम अपना नौकर नही भाई मानना और हर जगह इन का विश्वास करना।"

दूसरे दिन भैया ने मि० बलवीरचन्द्र को भोजन पर निमन्त्रित किया। ललिता आज सुबह से ही जुटी हुई थी। न जाने कितने शाक, रायते और चटनियाँ उस ने

तैयार की। ७ बजे के लगभग भैया मि० बलवीर के साथ भोजन के कमरे मे आये। एक थाल नौकर को दे और दूसरा खुद ले ललिता हाजिर हुई। आज उसे भैया से प्रसंशा का प्रमाण-पत्र पाने की पूरी उम्मीद थी।

ललिता ने मद भरी आँखों से एक वार भैया की ओर देखा और भैया ने उसे। अचानक उसकी निगाह बलवीर बाबू पर पडी और थाल उस के हाथ से छूट गया। झन्न !

"बदमाश! तू अब यहाँ भी आ पहुँची ?"

बलवीर बाबू की चिल्लाहट से कमरे का वातावरण कॉप उठा। मै और मॉ दौड़ी हुई आई। ललिता की होश गुम, तमाम बदन मे कपकपी और मुँह सफेद।

भर्राई-सी आवाज मे मॉ ने कहा—"यह क्या बात है भैया! तुम उस बेचारी के सिर क्यों हो रहे हो ?"

बलवीर बाबू ने इधर कोई ध्यान नही दिया और भैया का हण्टर लिये वे ललिता के बिल्कुल पास आ गये। हम सब सन्नाटे मे !

गरज कर उन्होंने पूछा—"बता तू यहाँ क्यों आई बदमाश ?"

ललिता की सारी मस्ती काफूर। साकार दीनता-सी ललिता ने गिडगिड़ा कर कहा—"आप तो जानते ही है। बस अब मै चली जाऊँगी सरकार !"

"अच्छा बता, अभी तक क्या-क्या हाथ मारे है ? सच-सच बता, नहीं तो तेरी जान निकाल दूँगा !"

"सच कहती हूँ सरकार ! कुछ भी नहीं। अभी तो मैंने अपना काम शुरू ही किया था।"

बलवीर बाबू ने भैया की ओर मुड़ कर कहा—"आप इस बदमाश के चक्कर मे कहाँ से पड गये ? इन लोगों का एक गुट है और आप जैसों के सिर पर उल्लू बैठाना ही इनका काम है।

राजा सुरेशसिंह को इस ने एक ही झटके मे चौवीस हजार को चित कर दिया था। जाइये, आप की किस्मत अच्छी थी; बच गये। इन बदमाशों के खाये तो पेड़ भी नहीं पनपे !"*

---

*१९-४-४२ को लखनऊ स्टेशन से ब्राडकास्ट।

जब घर में चोर था !

१

खट, खट, खट ! आवाज सुन कर मेरी आँखें खुल गईं। तभी-तभी मुहल्ले मे कई चोरियाँ हो चुकी थीं और वातावरण आतङ्क से भरा था। मैंने लेटे-ही-लेटे चारों ओर की आहट ली।

आधी रात की सूनी घड़ियाँ अपने में सिमटी-सी सो रही थीं। हवा सन्--सन् कर चल रही थी। वृक्षों की शाखाएँ झूम रही थीं और उन के मीठे स्वर सारे वातावरण मे सङ्गीत की सृष्टि कर रहे थे; मुझे ऐसा लगा कि देश और वागेश्वरी राग परस्पर आँखमिचौनी खेल रहे हों।

अन्धेरा इतना था कि पास ही पलङ्ग पर सोये अपने पति को भी मैं देख न सकती थी। उन का खर्राटा जरूर मुझे सुनाई दे रहा था। निश्चिन्त होकर मैंने करवट दूसरी ओर ले ली।

खट्, खट, खरड़ ! फिर वही आवाज़; मैं चौक कर अपने पलङ्ग पर उठ बैठी । गोदाम के कमरे से यह आवाज़ आ रही थी । मैंने स्विच दबाया और एक सेकेण्ड मे सारा चौक बिजली के प्रकाश से भर गया ।

मै उठ कर गोदाम के सामने आ गई । बाहर से किवाड़ों की साँकल लगी थी, पर भीतर जैसे कोई घूम रहा था । मैंने धीरे से आगे बढ़ कर अपने कान किवाड़ों से लगा दिये । भीतर चोर था । वह सम्भवतः शाम को आकर छिपा होगा और नौकर ने बाद में साँकल लगा दी ।

खूब फँसे बच्चू ! अब पीसो एक साल भर चक्की !! वह चोर था, मेरे यहाँ चोरी करने ही आया था । चोर के प्रति क्रोध स्वाभाविक है, पर उसकी बेबसी देख कर मेरा मन दया से भर गया । मैंने धीरे से साँकल खोली और किवाड पीछे की ओर उढ़का दिया, पर मैं सामने खड़ी थी । उस ने तुरन्त भीतर से किवाड फिर बन्द कर दिया । तीन–चार बार यों ही हुआ ।

शायद वह कोई परिचित था और उसे ख़तरा था कि निकलते समय पहचान न लिया जाऊँ । किवाड़ खोल कर मै दरवाज़े के सामने से हट गई, पर किवाड़ फिर बन्द हो गये । अब मुझे झुँझलाहट आ गई और मैंने फिर से साँकल लगादी ।

२

"लाला जी ! कमरे में चोर है।"

वे चौंक कर उठे, हड़बड़ाये-से। चोर का नाम ही बुरा है, फिर जब वह कमरे के अन्दर बैठा हो तो भूत से भी ज्यादा खतरनाक है। मैंने संक्षेप मे उन्हे सारी कथा सुनाई।

वे सँभल कर उठ बैठे और भीतर-ही-भीतर प्रोग्राम-सा बाँधने लगे।

"मेरा रिवालवर लाना ज़रा भीतर से !" जैसे वे सब कुछ के लिये तैयार थे।

अब लाला जी के हाथ मे रिवालवर था और मेरे हाथ मे टॉर्च। हम दोनों भीम-अर्जुन की तरह गोदाम के सामने डट गये। साँकल खोलने से पहले मैंने एक बार लाला जी की ओर देखा। उन की पिण्डलियाँ काँप रही थीं। बोले—"खोलो किवाड़ !"

मुझे ज़रा-सी मसखरी सूझी।

मैंने कहा—"रिवालवर तो मुझे दे दो और साँकल तुम खोलो।"

भर्राई-सी आवाज़ मे बोले—"तुम कई बार तो खोल चुकी हो पहले ! खोलो न झट ! तुम्हे क्या पता, रिवालवर कैसे चलता है !"

३

मैने साँकल खोली, किवाड़ पीछे को उढ़काया और टॉर्च की रोशनी कमरे में डाली। एक सेकेण्ड मे किवाड फिर बन्द हो गये।

इस बार लाला जी आगे बढ़े और उन्होंने ज़ोर से पैर का धक्का देकर किवाड़ खोल दिया।

"निकलता है बदमाश ! या यहाँ से मर कर ही निकलेगा।"

वे ज़ोर से चिल्ला पड़े। किवाड जोर से धमक उठा और भीतर से कूद कर एक बिल्ली मेरे पास से निकल गई।

"ओह ! बिल्ली थी भीतर और चोर समझते रहे। आप को इतनी न सूझी कि चोर कमरे में कैसे घुस पड़ता ? आप भी आदमी क्या एक तमाशा है !"

"बेवकूफ तुम खुद हो और बता रही हो मुझे। पहले चोर तुम्हारे दिमाग़ मे घुसा था या मेरे ?"

मै ज़ोर से हँस पड़ी, पर इसी समय किवाड़ फिर बन्द हो गये। हम दोनों ने एक दूसरे की तरफ देखा—"चोर है तो भीतर ?"

लाला जी क्रोध से तिलमिला उठे। चौकीदार को बाहर से बुला कर उन्होंने रस्सी निकलवाई और मेरा टॉर्च अपने बाये हाथ में ले लिया।

वे उस दुष्ट को बाँधने का इरादा कर चुके थे। आगे बढ कर उन्होंने अपना दायाँ पैर पूरे ज़ोर से किवाड पर मारा और बायाँ हाथ बढा कर कमरे मे लाइट भर दी।

एक दम वह दरवाजे के सामने से हट गये और अपने पलङ्ग पर जा लेटे। मैंने धीरे से उन के सिर पर हाथ फेर कर पूछा—

"क्या बात है? कोई जान-पहिचान का आदमी है भीतर?"

वे भरे बैठे थे। झल्ला कर बोले—"बात है तुम्हारा सिर! किवाड़ के पीछे नौकर ने बच्चागाडी खड़ी कर दी है। उस से टकरा कर किवाड़ बन्द हो जाता है। न वहाँ चोर है, न डाकू! तुम ने खामखा का भूत बना कर खड़ा कर दिया है।"

अब सारी स्थिति हमारे सामने थी और हम सब खिलखिला कर हँस रहे थे।

हमारे घर मे अब भी वह गाड़ी है और बच्चों ने उस का नाम चोरगाडी रख दिया है। जब कोई कभी उस के इस नामकरण का कारण पूछता है, तो सारा घर हँसी से भर जाता है।

है न यही बात ?

१

"आज मियाँ लतीफ खुद तशरीफ लाये थे और मेरे लिये, अम्मीजान को यह तोहफा दे गये है।"

शबनम के हाथ मे नीलम की अँगूठी चमक रही थी, वह उतार कर उस ने अपने प्यारे रहमत को दिखाई। रहमत का दिल बैठ गया और मरी-सी आवाज़ में उस ने कहा—"मुबारक प्यारी शबनम !"

शबनम जैसे साँप से छू गई। रहमत के गले में हाथ डाल कर उस ने कहा—"तुम क्या समझते हो रहमत कि तुम्हारी शबनम दौलत की झमक मे झूम उठेगी और तुम्हे भूल कर मियाँ लतीफ पर रीझ जाएगी ? तुम्हे मेरे प्रेम पर शक करने का यह हक अभी तक की किस घटना ने दिया है, यह तो जरा बताओ।"

"नहीं शबनम, मैं तुम्हारे प्यार पर शक नहीं करता। पर इस ज़माने मे दौलत का असर बहुत है और उसे दावा है कि वह इंसान की जान ही नही, उस का दिल भी ख़रीद सकती है। अच्छा, आज मियाँ लतीफ़ से क्या-क्या बातें हुईं ?"

"मैं क्या मियाँ लतीफ़ की बलैयाँ लेने गई थी ? वे अम्माँ से बैठे बाते करते रहे और उन पर अपने धन की धाक जमाते रहे। बात यह है कि अब्बा उन्हे चाहते है और तुम से कुढ़ते हैं, पर अम्माँ तुम्हे चाहती हैं। क्यों कि उन्हे मालूम है कि मै और किसी से साथ सुखी नहीं रह सकती। अब दोनों ने मिल कर अम्माँ पर डोरे डालने शुरू किये है !"

"और जो कहीं अम्माँ उधर ढल जायें ?"

"ऐसा नहीं हो सकता ! दुनिया मे माँ बेटी के दिल को सब से ज़्यादा जानती है।"

"फिर भी शबनम, दौलत बुरी बला है !"

"हाँ रहमत इस ज़माने मे दौलत बुरी बला है, पर प्यार उस से बड़ा है।"

सहारनपुर के नये बाज़ार में रहमत की बिसातखाने की चलती दूकान थी। दूकान के इञ्चार्ज उस के पिता हशमतखाँ थे, पर रहमत सब काम समझ गया था और दूकान के सब कामों की देख-भाल करता था। वे कोई

रईस तो न थे, पर उन्हे किसी बात की कमी न थी। अच्छा रोज़गार था, चार भले आदमियों मे इज़्ज़त थी।

शबनम के पिता जजी मे पेशकार थे। ख़ासी कमाई थी और बड़े ढङ्ग से रहते थे। बातचीत मे तो कुछ ऐसी तमकनत थी और चेहरा-मोहरा भी भगवान ने ऐसा दिया था कि चूड़ियोंदार पाजामा और शेरवानी पहन कर जज साहब ही लगते थे। वे चाहते थे कि शबनम ऐसे घर ब्याही जाए कि बिरादरी मे उन की सींक खड़ी हो जाए।

शबनम उन की इकलौती लड़की थी; रूप और शराफ़त का एक स्टैण्डर्ड। उसे उन्होंने जी दे-देकर पाला था और ख़ास हसरतों के मातहत मैट्रिक तक पढाया था। बिरादरी के नौजवानों मे शबनम की चर्चा थी और हरेक बाप उसे अपने बेटे की दुलहन बनाना चाहता था। रोज़ किसी न किसी का पैग़ाम पेशकार साहब के पास आता था।

लतीफ़ शहर के रईस अतहरहुसैन का छोटा लड़का था। घर मे लकड़ी का व्यापार होता था, शहर मे जायदाद थी, चारों तरफ़ हवा बँध रही थी, वक़्त साथ दे रहा था। लतीफ़ मनचला जवान था, उस ने अपनी माँ से कह दिया था कि वह या तो शबनम से शादी करेगा या फ़कीर हो जाएगा। पेशकार साहब लतीफ़ के बाप से वायदा कर चुके थे और लतीफ़ को दिल से चाहते थे।

शबनम बचपन से रहमत के साथ-साथ खेली, बढ़ी और पढ़ी। बचपन का यह साथ कब घुल-मिल कर प्यार की रङ्गरेलियों मे बदल गया, इसे दोनों मे कोई भी न जान पाया। अब दोनों एक दूसरे के प्रति प्रतिज्ञात थे। अपने पिता की अप्रसन्नता से शबनम परिचित थी, पर उसे अपनी माता के आश्वासन का भरोसा था।

२

"जब शबनम की मर्ज़ी है और वे दोनों आपस मे तै कर चुके है तो तुम्हे ही क्या ऐतराज है? फिर रहमत सुन्दर है, तन्दुरुस्त है, कमाऊ है। लङ्गड़ा-लूला नहीं, कुछ आवारा नही।"

शबनम की माँ ने रहमत की वकालत की, पर पेशकार साहब के मन में लतीफ की शान समाई हुई थी। गुर्रा कर बोले—"खामोश रहो! मै किसी बेवकूफ औरत का मशवरा नहीं चाहता। शादी मेरी मर्ज़ी से होगी और मैने लतीफ से वायदा कर लिया है।"

"पर तुम्हारी बेटी तो कहती है कि रहमत से शादी न हुई तो जहर खा लूँगी। जवान बेटी है, कोई गड़बड़ कर बैठी तो क्या होगा?"

"बेटी का दिमाग़ तो चार जेवर और रेशमी जोड़ों की झलक तीन दिन मे ठीक कर देगी। पहले तुम अपना दिमाग़ ठीक करो!"

"मेरा दिमाग़ तो ठीक है। लतीफ मुझे क्या पसन्द नही है, जो मेरे सिर पर चढ रहे हो? उस दिन वह आया, मैंने फौरन मिठाई मँगवाई और दस खातिरें कीं। मुझे क्या दीखता नही कि लड़की वहाँ बैठी राज करेगी।"

"अब कही तुमने अक्ल की बात। प्रेम, मुहब्बत, ये सब बचपन की बाते है। लड़की जिस के घर जाएगी, उसे ही मुहब्बत करेगी। और अभी तक तुम रहमत की माला न फेरतीं तो शबनम कभी की लतीफ के गीत गाने लगती। आखिर रक्खा क्या है उस भुखने के पास कि लड़की उस पर जान दे!"

माँ की आँखो मे अपनी प्यारी बेटी की एक सूरत घूम गई—जड़ाऊ जेवरों से जड़ी और रेशमी कपड़ों से लकदक। एक ऊँची हवेली, आइनों और तस्वीरों से सजे कमरे, एक शानदार पलङ्ग पर बैठी उस की बेटी शबनम और इधर-उधर दौड़ती नौकरानियाँ।

माँ का रोम-रोम खिल गया, पर उसी घड़ी उस की आँखो मे आ गया प्यार और मुहब्बत का पुतला वह रहमत, जिस के रोम-रोम मे उस की बेटी शबनम समाई हुई है। उस का क्या होगा? और क्या शानोशौक़त का यह

अम्बार शबनम के भीतर कोने-कोने में खेलती उस प्यास को बुझा सकेगा, जिस में हर समय रहमत की धुन बसन्त की कोयल बन कर कूका करती है ?

माँ की आँखों में अपनी प्यारी बेटी शबनम की एक दूसरी सूरत घूम गई—सादा कपड़े और मामूली ज़ेवरों से सजी, सुबह के आसमान-सी सरल और सुहावनी। वह और आगे बढ गई। एक मामूली इकमंज़िला मकान, ओटे के पीछे बना चूल्हा और उस में लकड़ी झोंकती शबनम और इसी सिलसिले के दूसरे सीन, जैसे ख़ुद उस की बीती ज़िन्दगी का एक सिनेमा हो !

माँ दो नावों पर पैर धरे चिन्ता की नदी में तैर चली। शुरू में दोनों पैरों पर उस का बराबर ज़ोर था। लतीफ की शान एक लहर बन कर आती और उस के कलेजे का टुकड़ा-टुकड़ा फुरेरी ले उठता और रहमत की मुहब्बत दूसरी लहर बन कर आती और वह उसमें डूब-डूब जाती।

उस ने बीसों बार शबनम और रहमत को प्यार से बातें करते देखा था, शराब के समुद्रों मे डूबी वे चार आँखे माँ की आँखों मे उतर आई और उस के भीतर खप्प से आ कर बैठ गई शबनम की वे आँखें, जो रातों नहीं झपतीं और तारों के भीतर जाने क्या खोजा करती है।

उस ने आँखे बन्द कर ली और जैसे सहसा उस के भीतर का सीन बदल गया। आज तो उसकी उम्र ढलाव

पर है, पर तब उस की चढ़ती उम्र थी—यही शबनम-सी १५-१६ साल की और उस के पडौस मे ही रहता था रहमत-सा वह अल्लारक्खा। वे दोनों भी यों ही प्यार करते थे—दोनों ने जिन्दगी के बड़े-बडे मंसूबे बाँधे थे, वादे किये थे और जुदा होने पर दोनों जहर की पुडिया खाने को तैयार थे। वाकई ऐसा मालूम होता था कि मिलन मे कोई बाधा आई और प्रलय की ज्वालामुखी फटी। पर उस दिन बाजे बजे, धूम हुई और वह दुलहन बनी पेशकार साहब के घर चली आई।

यहाँ उस का मन उचटा-सा रहा, उस का दिल भर-भर आया और उस के भीतर खलबली-सी मची रही। एक दिन अल्लारक्खा चोरी-चोरी आया, दोनो खूब रोये, पर थोड़े ही दिन बाद अल्लारक्खे की शादी हो गई और मेरा भी दिल अपने घर मे रम गया। फिर तो यह सब बीते दिनों के देखे मेले की याद-सा हो गया, मेरे लिये भी और अल्लारक्खे के लिये भी। बरसों बाद जब मै मैके गई तो देखा, भावजे उसे जोरू का गुलाम कहा करती थी।

उस के कानों मे गूञ्ज गया, शबनम के अब्बा का यह वाक्य—"प्रेम, मुहब्बत, ये सब बचपन की बाते है। लड़की जिस के घर जाएगी, उसे ही मुहब्बत करेगी।" और उस ने अपने दोनों पैर लतीफ की ही नाव पर रख लिये। उसे दीखा, रहमत की नाव मँझधार मे गोते ले रही है, पर

उसे ध्यान आया—अल्लारक्खा आज अपनी जोरू का गुलाम है और उस के कान बोल उठे—"लड़की जिस के घर जाएगी, उसे ही मुहब्बत करेगी।"

३

"तुम दिल्ली की सैर करते रहे मियाँ रहमत, और तुम्हारी शबनम की शादी भी हो गई ! वो बाजे बजे और दावतें उड़ीं कि लुत्फ आ गया !"

अपनी दूकान का सामान ले कर दस दिन बाद जब देहली से रहमत लौटा तो चुटकियाँ लेते हुए उस की भावज ने कहा। रहमत के लिये यह एक मजाक थी, वैसे ही उस ने उत्तर दिया—"और बेचारी शबनम की शादी देख कर तुम जैसी बुढ़िया को भी रश्क हुआ। क्यों भाभी, है न यही बात ?"

"मुझे क्यों रश्क होगा। मेरे तो छः फीट का गुड्डा बालों मे ख़िज़ाब लगाये घूमता है। रश्क होगा भैया तुम्हें जो सिर पर मौड़ बाँधने को पागल हुए फिरते थे, पर शबनम ने जिस की बात भी न पूछी।"

"जब मेरे सिर पर मौड़ बँधे और शबनम दुहलन बनी शर्माती डोले से उतरे तब तुम छींक देना और अपने गुड्डे को भी सूंघनी सुघा देना !"

हँसता हुआ रहमत बाहर निकल गया, पर पाँचे ही मिनट में जब वह लौटा तो उस का चेहरा फक हो रहा था। जब उस की दुनिया लुट चुकी थी और घर उस के लिये उजड़ा रेगिस्तान था!

माँ ने समझाया, बहिन-भावजों ने मिन्नतें कीं, पर रहमत न हिला, न डुला, न रोया-झिझाया। वह ख़ामोश अपने पलङ्ग पर पड़ा रहा। रात तक उसके शरीर की चेष्टाएँ कम होती गईं और सुबह होते-होते उस ने पलक झपकना बन्द कर दिया। सारा घर चिन्ता मे डूब गया।

डाक्टरों ने कहा—दिल और दिमाग़ दोनों ख़राब हालत मे है। हार्टफेल हो सकता है और पागलपन भी मुमकिन है। दवाएँ चलती रहीं, बिल बनते रहे, पर रहमत की न आँखे बन्द हुई और न उसे होश आया।

दसवे दिन रहमत ने आँखे बन्द करलीं और वह बड़बडाने लगा। दिल अब उस का ठीक था, पर दिमाग कतई खराब। डाक्टरों ने कह दिया—पागल!

अब रहमत अपने पलङ्ग पर सीधा तना बैठा रहता और हरेक चीज को बेहद ग़ौर से देखता। वह किसी को पहचानता न था—हरेक के चेहरे पर वह आँखे गड़ाता और पीछे हट जाता। कभी-कभी अपने कमरे मे लगी तस्वीरों को यों ही घूरने लगता और जाने क्या-क्या कहता रहता।

उस दिन शाम के झुटपुटे में जाने कब वह घर से निकल गया और सीधा शबनम के घर पहुँचा। शबनम की माँ ने उसे देखा और वह रो पड़ी। उस ने रहमत को बताया कि कैसे शबनम के बाप ने उस की इच्छा के विरुद्ध यह शादी की और वह निर्दोष है। रहमत आँख फाड़े उसे देखता रहा—उस ने न कुछ सुना, न समझा, बस वह देखता रहा।

अचानक वह उठा और ऊपर चढ़ गया, जहाँ चौबारे मे अक्सर वह शबनम से प्रेम की बातें किया करता था। उस की चेतना लुप्त हो चुकी थी, पर भीतर संस्कार जागरूक था। एक-एक चीज़ को वह घूरने लगा। बाहर कोने में शबनम के बाप के कबूतरों की काबक रक्खी थी और उस के ऊपर बैठी थी सुनहरी। यह बड़ी उड़ाका कबूतरी थी और शबनम इसे बेहद प्यार किया करती थी। जाने कितनी बार शबनम और रहमत के बीच यह खेल चुकी थी और दोनों ने इसे सुना-सुना कर बातों के चटखारे लिये थे।

रहमत इस के सामने रुक गया और ग़ौर से देखने लगा। सुनहरी उसे पहचान गई और लाड मे बिखर पड़ी—घुटर घू! घुटर घू!!

रहमत का चेहरा खिल गया और प्यार में डूब कर उस ने कहा—शबनम! सुनहरी उड़ कर ऊपर के ताक

में वैठ गई, जहाँ तोते का पुराना ख़ाली पिंजरा रक्खा था। रहमत ने झट उसे पकड़ लिया और पिंजरे मे बैठा कर तिल्ली लगा दी।

रहमत बुरे हाल हर समय वह पिंजरा लिये घूमता रहता है। सुनहरी को वह शवनम कहता है और यही समझता है। वार-वार उस से कहता है—"लतीफ कहता है, दौलत सब से वड़ी है और वह दिल भी ख़रीद सकती है, पर तुम कहती हो प्यार दौलत से भी वड़ा है। है न यही बात?" और जोर से हँस पडता है।

उस दिन वह रेलवे रोड पर पेड़ के नीचे अपना पिंजरा लिये पड़ा था कि अपना बुरका ओढ़े शवनम आ पहुँची। शाम के अन्धेरे मे अपना बुरका उलट कर वह रहमत के सामने वैठ गई।

"प्यारे रहमत ! मेरे गुनाहों की तुम्हे यह कीमत अदा करनी पड़ेगी, काश, पहले मैं यह जान पाती!"

और वह रो पड़ी। रहमत ने वहुत गौर से उसे देखा—"कौन हो तुम?"

"रहमत! तुम मुझे भूल गये? मैं हूँ तुम्हारी शवनम!"

"तुम शवनम? हा, हा, शवनम तो यह है!"

उस ने अपना पिंजरा ऊपर उठाया। सुनहरी ने शवनम को पहचान कर टेर दी—घुटर घूं! और

रहमत ने अपना प्रश्न दोहराया—"लतीफ कहता है, दौलत सब से बड़ी है और वह दिल भी खरीद सकती है, पर तुम कहती हो, प्यार दौलत से भी बड़ा है। शबनम, है न यही बात ?"

सुनहरी ने आवाज़ दी—घुटर घू ! और रहमत हँस पड़ा—हाँ, यही बात है !

वे तीन दिन

१

कहते हैं, कविता के साथ जब सङ्गीत का समन्वय होता है तो दोनों अजेय हो उठते है, पर जब सङ्गीत के साथ सौन्दर्य और उस के साथ तरुण शोखी आ मिलती है तब क्या होता है ? चञ्चल इस का जीता-जागता जवाब थी ।

जिस ने उसे एक बार देखा, उसका हो गया और जिस ने उस का गाना एक बार सुन लिया, उस के कानों मे हमेशा के लिये उस की तान ने घर कर लिया । और शादी ! शादी मे तब तक रौनक ही न समझी जाती थी कि जब तक उस मे चञ्चल की महफिल न जमे । रास्ता चलते लोग उन दिनों चञ्चल का ज़िक्र किया करते थे ।

उस का सङ्गीत ही उस का व्यवसाय था और यह तब खूब चल रहा था। उस युग की यह बात है, जब लोगों के दिलों में उमँगें थी और बटवे मे पैसे। लोग खाते थे, खेलते थे और खुशियाँ मनाते थे। चञ्चल की एक-एक तान पर तब चाँदी बरसा करती थी।

उस के रूप की शमा पर जलने वाले पतङ्गों की भी भीड़ लगी रहती थी, पर उस के लिये उन का उतना ही उपयोग था, जितना मुन्ने के लिये खिलौनों का। उस का जब जिस से जी चाहता, वह खेलती और जब जी भर जाता, उसे उठा कर दूसरी तरफ रख देती और जब ऊब जाती तो तोड़ भी डालती।

उस के चारों ओर मँडराने वाले भौंरे, उस के स्वभाव को जानते थे और इसी कारण वह जहाँ उन के आकर्षण का केन्द्र थी, वहाँ चारों ओर उस का आतंक भी था।

"अजब औरत है, पता ही नही चलता कि कब क्या कह दे और यह पता लगाना खुदा के सिर पर मौड़ बाँधना है कि जनाबा को क्या पसन्द है और क्या ना पसन्द!" यह उसे नज़दीक से देखने वालों का रिमार्क था और इस मे चञ्चल के पूरे स्वभाव की तस्वीर जैसे सिमट कर बैठ गई थी।

२

सुन्दरसिंह सचमुच एक सुन्दर नौजवान था—बच्चों के दिल-सा अल्हड़ और शेर-सा मस्ताना। वह उन भावुक लोगों मे न था जो एक ही फूल के सामने खड़े घण्टों स्वर्ग के स्वप्न सँजोया करते हैं। वह उन खिलाडियों मे था जो फूल को देखते हैं, मन चाहे तो तोड़ कर सूंघ लेते है और फेक देते है।

वह रेल मे माल बाबू था। तनख्वाह तो उस का जेब खर्च थी, ऊपर की आमदनी से, हर माह उस की पासबुक भारी होती रहती थी।

बदल कर आते ही उस ने चञ्चल की चर्चा सुनी और दूसरे ही दिन वह उस के घर जा पहुँचा। चञ्चल ने उसे देखा और उस ने चञ्चल को। घोडा सवार को तौल रहा था और सवार घोड़े को। दोनों ही सावधान थे, दोनों ही समझदार।

उस दिन चञ्चल ने जी तोड़ कर गाया और सुन्दर ने जी खोल कर रुपये दिये, पर उस ने दो-चार बार से ज्यादा चञ्चल की तरफ नहीं देखा। नीची आँखे किये वह पान खाने का मैच खेलता रहा। इन नीची आँखों मे चालाक चञ्चल ने देखा किसी शर्मीले युवक की झिझक न थी, एक सधे हुए सिपाही का बाँकपन

था, जिस मे गर्व और उपेक्षा मिले-जुले इठलाया करते है ।

गाना खत्म हुआ और झूमता हुआ सुन्दरसिंह चञ्चल के घर से बाहर आ गया। न सलाम, न शुक्रिया ! गरम लोहे की एक लकीर-सी चञ्चल के दिल पर खिच गई । अपनी जिन्दगी मे पहली बार आज उस ने अनप्यासी आँखे और अनमाँगते होंठ देखे।

तीन-चार दिन बाद वह फिर आया और फिर वही बात । खूब गाना, खूब रुपये और बस; चञ्चल से जैसे उसे कोई मतलब न था। चञ्चल का मन उस से कुछ पूछने को बार-बार उमङ्गा, पर अभिमान का समुद्र बीच मे लहरा गया, वह फुङ्कार कर रह गई !

उस के कानों मे अपने प्रसंशकों द्वारा बार-बार सुने वे मधुर वाक्य गूञ्ज गये, जिन मे उस की तुलना स्वर्ग की अप्सराओं से की गई थी। क्या वे सब झूठ थे ? उस का रोम-रोम जैसे चीत्कार कर उठा—हाय, क्या वे सब झूठ थे ?

वह अपने कमरे मे दोनों तरफ़ लगे आइनों के बीच मे, सहमी-सी आकर खड़ी हो गई । बिजली के प्रकाश मे, दर्पण की आलोक-माला के साथ मिल कर, चञ्चल का रूप चारों ओर बिखर गया । चञ्चल स्वय उस रूप की झमक मे स्तब्ध हो भौचक रह गई। सचमुच इतना रूप !

गर्व से उस की आँखे चमक उठी, पर दूसरे ही क्षण सुन्दर की याद ने यह चमक फीकी कर दी, जैसे आग की उभरती लपटों पर बारिश का दौंगड़ा आ गिरे।

उस ने अपने सारे जेवर उतार फेंके और भीतर के कमरे मे जाकर वह रोती-सी पलङ्ग पर गिर पडी। जिस ने भीतर आकर उस की तबियत पूछी, उसी पर गरम झाड़ पड़ी। उस का दिमाग़ भूखे भेडिये-सा बौखलाया हुआ था। मनोवैज्ञानिक दृष्टि से इस समय चञ्चल उन घड़ियों मे थी, जहाँ निर्बल मनुष्य आत्म-घात करते है, सबल शत्रुओं का खून और ग़रीब के लिये जहाँ खारे आँसुओं का ही सहारा है।

तीसरी बार भी वही बात। इस बार चञ्चल के गर्व की गाँठ खुल गई और खुद मुँह फोड़ कर उस ने चलते-चलते सुन्दर से पूछा—

"क्या मै जनाब के बारे मे कुछ जान सकती हूँ?"

"हाँ हाँ, नाम सुन्दरसिंह, काम माल बाबू और शौक सा-रे-गा-मा!"

"अब कब तशरीफ़ लाइयेगा?"

"जब पैर धड़ को उठा लाएँ और तबियत मे उमङ्ग हो!"

"तब भी तो?"

"कल ही, दस दिन मे या फिर कभी नहीं!"

और बिना उस की ओर से उत्तर का इन्तज़ार किये सुन्दर फिर चला गया। चञ्चल को खुशामदी बातें— जिन के हरूफ़-हरूफ़ में उस के रूप की तारीफ़ के लच्छे और क़दम-क़दम पर उस के बिना बेचैनी के फव्वारे और मर जाने की बेरौब धमकियाँ गुथी हों—सुनने की आदत थी। सुन्दरसिंह का यह बेरुखा जवाब और रुख़ जैसे उस के कलेजे को बींध गया।

अब रात-दिन उस के दिमाग़ में सुन्दरसिंह के स्वप्न थे। हजारों दिलों पर राज करने वाली चञ्चल सुन्दरसिंह के सामने हार गई थी, पर इस हार से उस के भीतर दुख की आँधी का उफान न उठा, सुख-सन्तोष की सरिता ही लहरा उठी थी—जीवन में पहली वार उस ने अपने में नारी के दर्शन किये थे।

३

चञ्चल अब भी शादियों मे जाती थी, गाती थी और रुपये कमाती थी, पर उस के घर पर अब सिर्फ़ सुन्दरसिंह का अधिकार था। वहाँ से भौंरों की वह भीड़ अब भगा दी गई थी। सुन्दरसिंह जब तक न आता, वह बेचैन रहती और महीने मे जो कुछ कमाती, उसे सुन्दरसिंह के आराम के लिये खर्च कर डालती। वह भी खुश थी और

सुन्दर भी। सुन्दर भी अब प्रेम की बाते करना सीख गया था और चञ्चल सोचती थी कि उस ने सुन्दर को पूरी तरह जीत लिया है।

वह अब बसन्त की रानी थी, पर उस दिन उस के बसन्त मे अचानक पतझड लौट आया। सुन्दर ने हँसते हुए बाहर से आ कर कहा—"लो चञ्चल, पता नहीं अब तुम कब मिलो। मेरा तबादला हो गया है और परसों मुझे जाना है। कमबख्त! बहुत याद आएगी तू!"

चञ्चल चोट खाये हवाई जहाज-सी, जैसे आसमान से गिर पडी—"ऐं! और मेरा क्या होगा?"

"तुम्हारा वही होगा जो सब वेश्याओं का होता है। सुन्दर गया, मुन्दर आया, चलाये जाओ अपना बिजनेस!"

चञ्चल का दिल टुकड़े-टुकडे होगया। एक का घर जल रहा था, दूसरा अपने हाथ सेकने मे मशग़ूल था। उस का जी चाहा, दुनिया के उस पार, कहीं एकान्त बन मे वह जा सोये, पर वह नारी थी। अपनी चोट को भूल कर उस ने कहा—"मेरी जान जा रही है और तुम हँस रहे हो? तुम चले जाओगे और मैं यहाँ ज़िन्दा रहूँगी? यही समझा है तुम ने मेरे दिल को इतने दिन मे, पत्थर!"

सुन्दर के भीतर तक चञ्चल की वेदना उतर गई। उस ने बहुत सी वेश्याएँ देखी थीं, पर आज उस ने वेश्या को नारी के रूप मे देखा। वह खिलाडी था, नये

अखाड़े मे उस ने नया पैंतरा वदला—

"चञ्चल ! मै ही तेरे बिना कहाँ रह सकता हूँ। मै तो तेरा दिल देख रहा था पगली !"

चञ्चल निहाल होगई। नारी का बल है विश्वास और वेश्या विजय पाती है अविश्वास के बल पर। पर चञ्चल अब नाम को थी वेश्या और उस के रोम-रोम मे आ बैठी थी नारी, जिस का स्वभाव प्रेम पर मिट जाना है, उस से खेलना नहीं !

सुन्दर ने चञ्चल को समझाया—वह नये शहर मे जाते ही एक मकान ठीक करेगा और आकर चञ्चल को ले जाएगा। वह अब उस के बिना नहीं रह सकता, नहीं जी सकता। कुल तीन दिन की तो बात है।

४

जब अन्तिम दिन सुन्दर चञ्चल के घर से चला तो वह भी बातें करती साथ चली। थोड़ी दूर दोनों चलते, सुन्दर रुकता और चञ्चल को लौटाने की कोशिश करता। अपनी बेचैनी और जल्दी ही ले जाने की प्रतिज्ञा दोहराता, पर फिर चारों पैर एक साथ चल पड़ते।

यों ही सिविल अस्पताल आ गया। यह शहर की आखरी बिल्डिङ्ग थी। सुन्दर ने हज़ार क़समें खाईं, लाख

वायदे किये, पर फिर भी कानखजूरे की तरह उसे चञ्चल को अपने से तोड कर अलग करना पडा। जब तक वह दीखा, चंचल उसे देखती रही। जब वह रात के अँधेरे मे लीन हो गया तो चञ्चल भरी आँखे और भारी दिल लिये लौट आई।

कुल तीन दिन की बात थी। सुन्दर आएगा और उसे ले जाएगा। चञ्चल ने तीन दिन अपना सामान सँजोने मे लगाये। तीन दिन बीत गये, पर सुन्दर न आया, न आया, उसे आना ही न था।

फिर भी उसे आशा थी—उस का विश्वास अभी डिगा न था। हम जो चाहते है, जिस के लिये हमारे मन मे अधीर चाह हैं, उस के न पाने की बात, असम्भव होकर भी हमारे निकट सरल-साध्य लगती है। चञ्चल सोचती—सुन्दर आएगा जरूर, वह मेरे बिना रह ही नही सकता। कौन जाने उसे छुट्टी न मिली हो, उस की तबियत ही खराब हो। आज नही कल, वह आएगा जरूर, पर आशा की भी एक सीमा है। आखिर प्रतीक्षा का स्रोत सूख गया और उसी के साथ चञ्चल के जीवन का सारा स्रोत-रस भी ! उसका दिमाग़ घूम गया—महीनो वह अपने कमरे मे खामोश पडी रही। दुनिया अब उस के लिये बे-रस थी। कोई उसे समझाने की कोशिश करता तो वह झल्ला उठती।

५

बरसों बीत गये। चञ्चल अब बुढ़िया हो गई। अपने ऊँचे मकान का किराया खाती है और रोज़ शाम को अपने झुर्रियों भरे चेहरे पर पाऊडर और रूज़ लगाये, वह अस्पताल के सामने आकर खड़ी हो जाती है और घण्टों कुछ सोचती रहती है। रोज़ नये कपड़े बदलती है, नये ढङ्ग से बाल काढ़ती है और नया बूट पहनती है।

लड़के उसे मेम साहब कहते हैं, पर वह चिढ़ती नहीं है। वह मेम साहब नहीं है, पर अपनी आँखों में वही बीस साल पहली चञ्चल है। उस रात का संस्कार उसे यहाँ तक खींच लाता है और वह खोई-सी रह जाती है। बाहर से उसकी चेतना खो गई है, पर भीतर जैसे उस का उर चेतन प्रश्नों से भरा है।

मेरा सुन्दर कहाँ है ? हाय, मेरा सुन्दर कहाँ है ? वह कब आएगा ? हाय, मेरा सुन्दर कब आएगा ?

इन हाहाकार भरे प्रश्नों के पीछे जैसे आशा का उजेला है। सुन्दर परसों आएगा और मुझे ले जाएगा। वह मेरे बिना नहीं रह सकता। मेरा सुन्दर आ रहा है। कुल तीन ही दिन की बात है !

उस के वे तीन दिन क्या कभी पूरे होंगे ?

गुलाबी चुनरिया

१

मङ्गला जङ्गमगढ़ के ज़मींदार चौधरी रामभज की धर्मपत्नी थी। जङ्गमगढ़ न कोई स्टेट है न ताल्लुका, एक साधारण गाँव है और चौधरी रामभज यहीं चार हल की खेती करते हैं। मङ्गला को रामभज की चौधरन कहा जाए या रामभज को मङ्गला का चौधरी, इस मे समाज–व्यवस्था की दृष्टि से भले ही विवाद हो सकता हो, गाँव वालों के लिये तो रामभज ही मङ्गला का चौधरी था—रामभज से मङ्गला न थी, मङ्गला से रामभज था।

जवानी की शराब अल्हड़पन की सुराही से जब मस्ती की प्यालियों मे उँडेली जाती है तो ज़िन्दगी की बस्ती झूम उठती है, पर मङ्गला ने इस फिलासफी मे एक नई खोज की थी। वह बुढापे की सुराही से जब जवानी

निन्यानवे

की शराब प्यार की प्यालियों मे उँडेलती तो न सिर्फ उस की ही जिन्दगी की बस्ती झूम उठती, गाँव के बूढ़े, जवान और बालकों के जीवन की बगिया भी हँसते फूलों से भर-भर जाती। उस के शरीर मे बुढापा था, स्वभाव मे जवानी, बाहर बुढ़ापा और भीतर जवानी। इस तरह जीवन की गङ्गा के दो किनारों को साथ मिला कर मङ्गला चल रही थी।

किसी बहू का भाई आता, मङ्गला उस का खाना बना आती। किसी की बहू-बेटी विदा होती, वह काम में हाथ बटाने को तैयार रहती। गाँव के जमाई सुसराल आते ही मङ्गला को पूछते और गाँव के बीमार बेहोशी मे भी मङ्गला के नाम की माला फेरते। वह सब के काम भी आती और सब को हँसाती भी। उस की चुटकियाँ इतनी नुकीली होती कि जिस पर वह काटती, वह हँसता भी और कसकता भी।

जङ्गमगढ़ के पास ही एक गाँव था नारायणपुर। वहाँ मङ्गला की एक सहेली रहती थी मखमली। आज उस के लड़के का मुण्डन था, ख़बर आई थी, सख्त तक़ाज़ा था कि उस में मङ्गला ज़रूर आए।

जब मङ्गला नारायणपुर जाने को उठी तो उस की छोटी बहू ने उस की कुर्ती का छोर पकड़ कर हिलाते हुए कहा—"यों पसगावें जाया जाता है कही माँजी, अपनी इज्जत के मुताबिक ही कही पैर उठाया जाता है। चार आदमी वहाँ क्या कहेंगे कि घर मे तीन-तीन बहुएँ है किसी को यह नहीं सूझा कि सास को एक चुनरी उढ़ा देतीं।

बहू उठी और अपनी गुलाबी चुनरी निकाल कर ले आई।

"लो, यह ओढ़ो!" और उस ने खुद हँस कर वह चुनरी बुढ़िया सास को उढ़ा दी।

"भला यह चुनरी कही मेरे अच्छी लगती है बहू? कोई क्या कहेगा वहाँ कि लो भाई बुढ़िया के पर निकल रहे हैं। यह तो तुम बहुओं के लायक है।" मङ्गला ने ज़रा सकुचाई-सी आवाज मे कहा और बहू ने उस के मन की गाँठ खोलते हुए कहा—"तुम कौन सी बहू से कम हो माँजी! चुनरी ओढ़ कर गौनियाई-सी लगती हो। और फिर बुढापा जवानी मन का है। तुम तो हजार जवानों से अच्छी लगती हो माँजी!"

मङ्गला ने चुनरी ठीक की और बहू ने छोटा-सा शीशा उसे दिखा दिया।

३

बुढ़िया गुलाबी चुनरी मे लिपटी लहराती और उमङ्गों मे भीतर तक गुलाबी हुई बलखाती नारायणपुर के रास्ते चली जा रही थी। दूर से घोड़े पर जाते फतेहपुर के बड़े थानेदार धीरजसिंह ने उसे देखा।

धीरजसिंह अधेड़ उम्र, फौजी शरीर, आँखों में सुर्खी के डोरे, बोल खारा पर मतलब के लिये जिस में मिठाई घोलते देर न लगे। झूठे और सच्चे मामलों मे दान-दक्षिणा लेना तो थानेदार का हक़ है।

और थानेदार की तन-मन-धन से सेवा करना गाँव वालों का धर्म, पर धीरजसिंह इस से एक पाठ और ज़्यादा पढ़े हुए थे। उन का स्वभाव ज़रा रसिक था। गाँव के पुरुष जब उन की इतनी सेवा करें तो स्त्रियाँ ही उस से क्यों वञ्चित रहे? स्त्रियों के प्रति उन के मन मे सहज कृपा थी। जो काम लक्ष्मी और सरस्वती उन से मिल कर न करा सकती थी वह किसी स्त्री के कुछ क्षणों के परिश्रम से ही सुलभ था।

धीरजसिंह ने दूर से देखा एक गुलाबी चुनरी हवा में हिलती चली जा रही है। मङ्गला की थिरकती चाल और नाटे कद ने धीरजसिंह की आँखों मे एक सुन्दर तस्वीर खींच दी। उन्होंने देखा, गोरा रङ्ग, १८-१९ साल की

उभरती उम्र, चपल चितवन और सरल स्वभाव। दूर होकर भी जैसे वे उस के पास पहुँच गए। पहले वह सकुचाई, झिझकी और घबराई, पर धीरजसिंह ने अपनी कला से उस की झिझक दूर कर के अपना जाल उस की ओर फेंका—"थानेदार जिस का अपना हो, गाँव में किस की मजाल है कि उस की तरफ तिरछी आँखों से देखे। अगली ही सर्दियों में तुम्हारे मालिक को मुखिया बनवा दूँगा और चारों तरफ उसकी धूम मच जाएगी। सारे मुकद्मे उस की ही मार्फत सुलझा करेंगे। वह भी समझेगा कि कोई बीबी मिली है और तुम्हारे पैर धो-धो कर पीएगा।"

आतङ्क जहाँ अपना-सा मुँह लिये लौटता है, प्रलोभन वहाँ सफलता की पताका फहरा देता है, यह जीवन का अनुभव है। धीरजसिंह ने देखा, उस का मन्त्र सफल होगया है और स्वर्ग उस की अब गोद में है। सडक का फेर काट कर उस ने अपना घोड़ा गुलाबी चुनरी की ओर बढ़ा दिया। उस के जीवन में इधर बहुत दिन से पतझड हो रही थी। आज उस ने देखा कि अचानक उस में बसन्त की लहरें इठला रही हैं। सडक पर घोड़ा दौड़ रहा था और घोड़े की पीठ पर धीरजसिंह का दिल, कौन बताये कि ज्यादा गरमी किस में थी?

मङ्गला ने दूर से देखा, थानेदार राह काट कर उसकी ओर बढा चला आ रहा है। सारा मामला समझते उसे

क्या देर लगती, उस ने ज़रा-सा घूंघट खींच लिया और उस के भीतर मुस्काती चली। थानेदार ने पास आ कर घोड़े की चाल धीमी की और वह घूघट जैसे उस के भीतर तक झमक उठा।

"कहाँ जा रही हो इधर, बहू ?"

धीरजसिंह ने अपनी भूमिका प्रारम्भ की और मङ्गला ने अपना घूघट ऊपर खींच कर जैसे उस का उपसंहार कर दिया।

"आय, हाय, तुम इस गुलाबी दुपट्टे को देख कर कितनी दूर से चले आ रहे हो! आग लगे इस चुनरी मे बेटा! कैसे पसीने मे तर हो, ज़रा-सा मुँह निकल आया है! मैने पहले ही बहू से कहा था कि मुझ बुढ़िया को कहीं सोहती है यह चुनरिया, पर वह न मानी। आग लगे इस चुनरी मे बेटा! न मैं यह ओढ़ती, न तुम यहाँ तक दौड़ते।"

"हाय, हाय, कैसा हड़काया कुत्ता-सा दौड़ा आया है बेचारा!"

बुढ़िया अपनी बात दोहराये चली जा रही थी और थानेदार जैसे बेहोश हो रहा था, उस की आँखे ज़मीन से उठती न थीं और गला बन्द था, जैसे इमली का पन्ना खाकर उस के टौंसिल फूल आए हों।

भैया की डायरी

१

इस बार बरसों बाद मैं अमृतसर आई तो देखा घर की दुनिया बदल गई है। किले-सी उस कोठी मे न सफाई है, न वह पहली-सी व्यवस्था। भैया क्या न रहे, यहाँ का सारा रास-रङ्ग ही उजड़ गया। मन पर एक ठेस पड़ी—समय बड़ा बलवान है। कभी इस कोठी के बाहर की सडकें महका करती थीं, आज उस के फर्श भी धूल से भरे है।

धूल से मुझे चिढ है, नौकरों से रोज इस पर झिक-झिक रहती है कि यह धूल क्यों रह गई, वह जाला क्यों छोड दिया। मुझे खुद झाड़ू पकड़े देख, कभी-कभी लाला जी कहा करते है—तुम पहले भव मे भङ्गिन थीं, किसी मुनि की तुमने सेवा की और तुम्हे यह सुन्दर जीवन मिल गया।

मैंने नौकरों को पकड़ा, चिल्लाई, लोभ दिया, खुद साथ लगी। तीन दिन मे कोठी चमचमा उठी, पर फ्लैंण्डर्स का एक मोर्चा लड़ना अभी बाकी था—अलमारियों को जाने कब से हवा न लगी थी और जाने उन में क्या-क्या भरा था? एक-एक काग़ज़ छाँटा और फाइले ठीक कीं—इन का अब शायद कुछ उपयोग न था, फिर भी उन्हे फेक न सकी। एक अलमारी में भैया की दस-बारह डायरियाँ थीं। वे जब से जापान गये, डायरी लिखने की उन्हे आदत हो गई थी।

"वह खुद एक गुलाब का फूल है और उसे गुलाब के फूल बेहद प्यारे है। जब सुबह मेरे घर आती है तो फूलों का एक गुलदस्ता साथ लिये, उन्हीं की तरह हँसती—बिखरती। वह नही जानती कि मै रात मे भी उस के ही स्वप्न देखता हूँ।"

डायरी मे मनुष्य के दिल की तस्वीरें उतरी होती है। डायरी लिखते समय वह नही जानता कि इसे कोई और भी पढ़ेगा। एक पूरे पेज पर ऊपर का वाक्य लिखा था। तब भैया जापान में थे और यह वहीं की किसी लड़की का चित्र है। मैं हँस पड़ी—वाह, इस डायरी में तो बड़ी मज़ेदार कविताएँ है!

ज़्यादातर डायरियाँ व्यापार सम्बन्धी याददाश्तों, रोज़ के हिसाब, पते और मित्रों के सिग्नेचर्स से

भरी थी, पर कहीं-कहीं जीवन के भीतरी चित्र भी थे। एक पन्ने पर लिखा था—

"रहिये अब ऐसी जगह चल कर जहाँ कोई न हो !
हम सखुन कोई न हो और हम ज़बाँ कोई न हो !!
और अगर पड़ जाइये बीमार तो कोई न हो तीमारदार !
और अगर मर जाइये तो नोहागर कोई न हो !!"

यह उन दिनो की डायरी थी, जब भैया को हार्ट डिजीज़ के दौरे उठते थे। इस उद्धरण के पीछे उन की मायूसी की कितनी गहरी तस्वीर झाँक रही है ? मेरा दिल भर आया, पर इस के दो महीने बाद एक पेज पर लिखा था—"जीवन के बहुत से मसले है और नये-नये सवाल मन मे उठते हैं, पर उन मे यह सवाल कितना अहम है कि आत्म-घात करने के लिये ज़हर पीकर पड जाना ठीक है या कूद कर अञ्जन के सामने लेट जाना ?" इस सवाल के पीछे आदमी के दिल की कैसी तस्वीर है ? मैं एक बार काँप गई।

मैने एक और डायरी उठाई। नवम्बर के महीने मे दस-बारह पन्नो पर एक लेख-सा था। मै उसे पढने लगी। लेख तो नही, वह एक कहानी थी—पता नहीं, उन की कल्पना या जीवन की सच्ची कहानी। सम्भव है यह किसी लेखक की कृति हो और अपनी रुचि के अनुसार पसन्द

आने से उन्होंने इसे किसी पत्र से नकल की हो। कुछ भी हो, यह एक सुन्दर चीज है और इस मे हृदय की वृत्तियों का ऐसा चित्र है कि पढ कर मन में गुदगुदी होने लगती है।

मैंने उस की नकल कर ली और साफ करके भैया की डायरियाँ एक अलमारी मे लगा दीं। नकल नीचे दे रही हूँ—

जिन्दगी के वे तीन दिन

"तुम कहो तो मै तीन दिन के लिये रावलपिण्डी हो आऊँ? पिताजी की तबियत ख़राब है। उन के कई ख़त आ चुके, कल तार आया है।"

हीरा स्वतन्त्र है, फिर भी उस ने इस रूप में मेरे प्रेम-अधिकार की जैसे घोषणा कर दी। मैं निहाल हो गया और अपने उतरे चेहरे को सँभालते हुए मैंने कहा—"मै तो ख़ुद तुम से कई बार कह चुका हूँ, पर तुम सुनती ही नहीं। अच्छा, कब जा रही हो!"

"जब तुम खुशी से कह दो और पीछे दुखी न होने का वायदा करो!"

मेरा दिल पानी-पानी हो गया। वाह, तुम्हे पीछे दुखी न होने का भी फिक्र है!

*　　　*　　　*

रात आधी से ज्यादा जा चुकी है, सिनेमा-घरों मे अँधेरा छा गया, मेरे दिल मे इतना अँधेरा है कि उस में

नीद भी नही आ पाती। कहानियों की एक किताब पढने लगा, पर मन न लगा, फिर भी पढ़ता रहा। दिमाग थक गया, पर नींद न आई। उठ कर कोठी के बरामदे मे घूमता रहा और पागलपन की हद हो गई, घूमता-घूमता तुम्हारे घर के सामने जा पहुँचा। अब दो बजे थे। चाँदनी मे तुम्हारा वह छोटा-सा सुन्दर भवन स्नान कर रहा था और उसकी गोद मे पडी तुम सो रही होगी, तुम्हे क्या मालूम कि बाहर क्या हो रहा है। तुम्हारे ध्यान मे डूबा लौट आया, पड रहा, करवटें, दो झपकियाँ और तुम ! आँख खुल गई और तुम कहाँ ?

*   *   *

सुबह स्टेशन गया और रूमाल हिला कर तुम्हे विदा कर दिया। अब पैर शरीर को घर की तरफ ला रहे थे और मन तुम्हारे कम्पार्टमेण्ट के साथ दौड रहा था। रावलपिण्डी, प्लेटफार्म नम्बर ४। तुम नीचे उतरीं, जैसे सारा प्लेटफार्म चमक उठा। चलो बाहर, सामान ताँगे मे रक्खा और अब मेरी मौत आ गई। मुझे क्या पता तुम कहाँ जाओगी ? हाय, मै अब क्या करूँ ? मेरा मन भी अन्धा हो गया, कल्पना का दीपक भी बुझ गया, जैसे कुम्भ के मेले मे नई दुल्हन खोई जाए और वह घबरा उठे।

*   *   *

दिन भर तबियत उडी-उड़ी रही। रात की गाड़ी का समय हो आया और मै स्टेशन जा पहुँचा। शायद तुम आ जाओ! परिचित गेटकीपर ने पूछा—"आज तो आप सुबह भी आये थे, मैंने अपने कार्टर से देखा था आपको!"

मैं जैसे नींद से जाग गया। वाह, तुम आज ही सुबह गई थीं तो आज ही कैसे लौट आओगी? मैं शायद पागल हो गया हूँ, पर आज का दिन कितना बड़ा हुआ कि मै दूसरा दिन समझ रहा था!

मै चुपचाप लौट चला—"तो गाड़ी नहीं देखते?" गेटकीपर ने पूछा। मेरा अब कौन आने वाला था!

*　　　*　　　*

आधी रात जा चुकी, मैं बैठा तुम्हारी तस्वीर देख रहा हूँ और सोच रहा हूँ, तुम्हारे आने में अभी लम्बे-लम्बे दो दिन और है। आज का दिन तो बीत ही गया, बस थोड़ी देर मे अब लेट जाऊँगा और करवटें बदलूंगा। पता नही कब कम्बख्त नींद आएगी और तब कहीं तुम्हारा रूप मेरी पलकों के आङ्गन मे बिखरेगा, पर फिर चौंक कर आँखे खुल जाएँगी और उन में उमड़ेंगी गङ्गा-यमुना।

दुनिया में आदमी सोकर खोता है और प्रेम के संसार में जाग कर! क्या कोई ऐसी दवा नही हो सकती कि मैं खालूँ और सो जाऊँ और तब उठू कि जब तुम आ चुको।

काश, ऐसी दवा हो! मै अपनी जिन्दगी बेच कर भी उसे खरीद लूँ!

* * *

बार-बार दिल उमड़ता है और दौड़ जाता है। एक तरफ यह घर और दूसरी तरफ रावलपिण्डी स्टेशन। घर से दिल उड़ता है और रावलपिण्डी के स्टेशन से टकरा जाता है। मेरी बेचैनी की रावी के ये जैसे दो किनारे हों और प्यार एवं मिलन की लहरे इन किनारों पर सिर पटक कर विलाप कर रही हों!

* * *

एक स्लिप मिला कि स्यालकोट से मि० गुप्ता आये है और इञ्जीनियर शर्मा के यहाँ ठहरे है। वहाँ गया, तीन आदमी एक साथ खाना खा रहे थे, मि० गुप्ता, उन के बहिनोई और मि० शर्मा। सब से पहले मेजवान ने खाने से हाथ रोका और दोनों मेहमान खाते रहे।

मि० शर्मा ने कहा—"वाह, तुम खा चुके?" मुझे एक मजाक सूझा, मैंने कहा—"हजरत, तुम्हे ही खाने को मुफ़्त का माल मिल रहा है, उस ग़रीब को तो अपना घर दिखाई देता है!" बात कुछ इस अन्दाज से कही गई कि कमरा हँसी से भर गया। मि० शर्मा ने कहा—"वाह, वाह! बहुत बढ़िया बात रही।" मैं पाँच वर्ष पुरानी एक याद मे डूब गया।

मै तुम्हारी लाइब्रेरी से एक पुस्तके लेने आया था, देखा, तुम बीमार पड़ी हो। मै पास बैठ गया। एक मच्छर आया और तुम्हारे कपोल पर काट गया। जहर की गर्मी से वह जगह दफड़ा गई। क़तई साधारण भाव से मैंने कहा—"आप के यहाँ बहुत मच्छर मालूम होते है?"

गहरी मसखरी मे उतर कर तुम ने कहा—"बहुत बड़े-बड़े!"

अब मै भी ज़रा आगे बढ़ गया—"और वे काटने की जगह भी खूब चुनते हैं।"

तुम मुस्कराई और अपना हाथ प्यार से मेरे हाथ पर रख दिया। ऐसी मुस्कराहट मैंने जीवन मे कभी न देखी थी।

"जब वह मच्छर आया, तुम ने उसे रोका नही?" मैंने सवाल किया और तुरन्त उत्तर मिला—"रोका तो, पर वह रुका नही और रोकने से रुकता ही कौन है?" तुम फिर मुस्करा उठी और मै जैसे बेहोश हो गया और बस, उसी दिन हम दोनों ने एक नई दुनिया देखी।

*   *   *

रात मे १० बजे स्टेशन गया, गाड़ी देखने, शायद तुम आ जाओ! गाड़ी आरही है। काश, तुम इस गाडी से आ जाओ! गाड़ी प्लेटफार्म पर आ गई और एक-एक

कम्पार्टमेण्ट मेरे सामने से गुजरने लगा। सेकेण्ड क्लास कम्पार्टमेण्ट मे दूसरी ओर मुँह किये तुम खडी थीं—वही चैस्टर, वही गुजराती जूडा। मेरे पैरों मे जैसे बिजली का कनेक्शन जुड़ गया हो और मै दौड़ा। गाडी ठहरने से पहले मै कम्पार्टमेंट के सामने था। डिब्बे मे तुम इकली थीं, मेरा मन उभरा आ रहा था।

"तुम आ गई! बडी शैतान हो तुम, मै नही बोलता तुम से।"

तुम मुडीं और मै सन्न! वह तुम न थीं, तुम्हारे ही से शरीर की कोई और थी। "माफ करना बहिन! मेरी पत्नी भी इसी ट्रेन से आरही है। वे शायद दूसरे डिब्बे मे है।" मैने क्षमा माँगी, पर उन का पारा गरमा रहा था। झन्ना कर बोलीं—"हैट लगा कर तो आज-कल के छोकरों की आँखे ही चुधिया जाती है।"

* * *

सुवह उठा तो शरीर टूटा हुआ और दिल ऐसा सुन्न कि डाक्टर ने कोकीन का इञ्जेक्शन कर दिया हो! जी मे आता था कि कहीं अँधेरे मे जा पड़े और कोई हमारी सूरत न देखे।

नौकर ने पूछा—"वाबू जी, आप अभी नहायेंगे या देर मे?"

"अभी नहा कर मुझे कौनसा स्वर्ग में जाना है !"

नौकर चाय ले आया—"क्यों, आज पानी मे कहीं आग लग गई है ? अबे, यह नहाने का वक्त है या चाय पीने का ?

वह अपना-सा मुँह लिये मुझे घूरता बाथरूम मे चला गया ।

*　　　*　　　*

तुम्हें रात की गाड़ी से आना था और अभी चार बजे थे । साइकिल पर चढ़ कर रावी पहुँच गया और किनारे की घास पर लेट कर खूब रोया । दिल कुछ हल्का हुआ और आँखे झप गईं । क्या देखता हूँ, होटल के एक कमरे मे एक युवक के साथ बैठी तुम शराब पी रही हो । यह युवक रामलाल है । अच्छा, पिता की बीमारी के बहाने रावलपिण्डी जाने का यह मतलब है ! अब मै समझा !

मेरे मुँह से एक चीख निकल गई, मै उठ बैठा । न होटल था, न तुम, न रामलाल । मैं रावी के तट पर इकला था । यह सब स्वप्न था, फिर भी मेरा दिमाग़ झन्ना उठा । यह कैसा स्वप्न है ?

मेरे सामने अँधेरा छाने लगा । दिल की धड़कन बेकाबू हो चली । मै रो पड़ा, खूब ज़ोर से ! मुझे लगा कि

मेरा हार्टफेल हो रहा है। मैं अब मर जाऊँगा और हाय, उसे पता भी न चलेगा कि मुझे क्या हो गया था ?

इसी समय घास बेच कर लौटती एक चमारी उधर से निकली। मै अपनी छाती जोरों से दबाए रो रहा था वह ठहर गई। पास को आकर उस ने पूछा—"अरे भाई तुझे क्या हो गया है ? हाय, हाय, कैसी हालत हो रही है तेरी ?"

"मुझे दौरा पड़ गया है बहिन ! हो सके तो मुझे एक घूंट पानी पिला दो !"

वह झिझकी। मै समझ गया—"तुम घबराओ मत। चमारी नही, तुम मेरी सगी बहिन हो और इस वक्त तुम्हे भगवान ने ही भेजा है ?"

उस ने मुझे पानी पिलाया। थोड़ा-सा मेरे मुँह पर छिडका और मुझे फिर से लिटा दिया। मेरी तबियत सँभल गई और उठ कर मैंने उसे एक रुपया दिया। वह मेरी तरफ़ देखने लगी। मैने उसे कहा—"आज से तुम मेरी बहिन हो। जब कोई मेरे लायक काम हो तो याद करना।" और मैने उसे अपना पता बता दिया। बड़ी मुश्किल से उस ने रुपया लिया।

"तुम्हारा नाम क्या है बहिन ?" उठते-उठते मैंने पूछा।

नींव की ईंट

१

मुसलमानी ज़माने से सहारनपुर ज़िले में एक गाँव था—बहेड़ा और आज वह 'सन्दलसिंह का बहेड़ा' के नाम से प्रसिद्ध है। यह सन्दलसिंह कौन था ?

सन्दलसिंह एक साधारण किसान था और न जाने कब और कैसे यह बहेड़ा उस के नाम से, सारे ज़िले मे 'सन्दलसिंह का बहेडा' बन गया था। गाँव का नामकरण अक्सर ज़मींदार के नाम पर होता है, इस लिये आम अनजान आदमी सन्दलसिंह को ही गाँव का ज़मींदार—मालिक समझते थे और यह बात गाँव के बड़े ज़मींदारों के दिल मे काँटे की तरह चुभती थी।

मुखिया और नम्बरदार कहते—"मियाँ के पास ढाई बीघे तो जमीन नहीं है और बन बैठे हैं गाँव के मालिक। हूँ ! सूरत तो देखो कम्बख्त की, जैसे कोई जुलाहा हो !"

गाँव के किसान भी सन्दलसिंह की इस सम्मान-वृद्धि से खुश न थे। वे कहते—"सन्दल के पास दो हल है। उन से अच्छी हालत के किसान यहाँ गॉव में पड़े है फिर उस के नाम मे ही ऐसा क्या सुरखाब का पर लगा है कि उस का नाम गाँव के साथ चिपका दिया जाए?"

सन्दलसिंह ने कभी किसी से यह प्रार्थना न की थी कि उस का नाम गाँव के नाम के साथ चिपका दिया जाए! और फिर नाम कोई ऐसी चिपकौआ चीज़ नहीं है कि कोई कहे भी तो कहते ही चिपक चले।

कुछ कम बोले लोग भीतर-ही-भीतर मन-मसोस कर कहते—"कम्बख्त है किस्मत का धनी। रियाया होकर भी राजा बन बैठा है।"

गरज़ यह कि गाँव का हरेक आदमी सन्दलसिंह को कनअँखियों से देखता और उस से कुढता था, पर सन्दलसिह यह सब कुछ जान कर भी जैसे कुछ न जानता था। वह जिस से मिलता, हँस कर, जिस से बोलता प्यार से और दोस्त हो या दुश्मन, सब के चार काम कर के चलता।

२

गुलाबी सर्दियाँ शुरू हो गई थी और किसान बोरा कर के निबट चुके थे। रात मे उस दिन मुखिया की

चौपाल जमी थी, गाँव के सभी ख़ास-ख़ास आदमी जमा थे और हुक्के का मैच चल रहा था। इधर-उधर की गप-शप चलते-चलाते सन्दलसिंह पर बात आ टिकी।

मुखिया ने अपने दिल की कुढ़न को होंठो की इठलाती हँसी मे छिपाते हुए कहा—"हमारा सन्दल है भागवान! जहाँ चाहो इस का नाम सुन लो। हम नाम भर को मुखिया है, पर हमे कोई जानता भी नहीं।"

नम्बरदार ने खाँसते-खाँसते कहा—"भाई, अपने मे से किसी की आबरू बढ़े, तो अपनी ही है। ग़रीबी-अमीरी तो किस्मत की है, पर नाम फैलाना भी किसी-किसी को ही आता है।"

पहले नम्बरदार की बात मे जोड़ लगाते हुए दूसरे नम्बरदार ने कहा—"इस मे क्या शक है? बहुत से धनी आदमी नाम बढ़ाने की जुगत मे ही कौड़ी-कौड़ी को मुहताज होगए।"

मुखिया ने पूरी बात पर पालिश करते हुए कहा—"कहते तो है सभी, पर जानता है सिर्फ सन्दल ही कि कैसे हीङ्ग लगे न फिटकरी और रङ्ग गाढा आवे।"

भींगा चौधरी दूर बैठा चुपचाप सब की बाते सुन रहा था। वह ख़ुश था कि सन्दल कसा जा रहा है, पर उस के दिल मे मचमचाहट थी कि जूते मख़मल मे लिपटे क्यों पड़ रहे है?

सन्दलसिंह ग़रीब किसान होकर भी, इज़्ज़त के मैदान पर यहाँ तक कब्ज़ा करले कि गाँव का नाम ही उसके नाम पर चले, इस अपराध की सजा क्या इतनी सादी होनी चाहिये ?

सन्दलसिंह भी सब सुन रहा था। प्रसंशा का आँचल ओढे, थिरकती निन्दा की कुलटा उसे दिखाई दे रही थी, पर उस का सहन ऐसा विन्ध्याचल था जो अपवादों की आँधी से फुरेरी लेता है, काँपता नहीं !

यों ही चर्चा मे रात के दस बजने को आये।

३

"नाई ! जा मुखिया जी के घर जा। कहना कि ५–६ महमान आये हैं। खाना बना दे। देख, मुकदमे मे जो सच बोलता है उसका नाश हो जाता है और पञ्चों में जो झूठ बोलता है उस का भी नाश हो जाता है। मुखियानी जो जवाब दे वह ज्यों का त्यों यहाँ कह देना। जा !"

नाई सोचता चला गया। सब सन्दल की ओर देखने लगे—आख़ीर यह क्या तमाशा है ?

सन्दलसिंह ने कहा—"आप रोज़ जानना चाहते हैं कि इस ग़रीब की चारों तरफ़ चर्चा क्यों है ? यह नाई आज इस बात का जवाब देगा।"

बूढे चौधरियों की भेद भरी आँखें, एक साथ सन्दल पर आ जमी, पर उस की आँखों मे न कोई इशारा था, न व्यङ्ग, न चञ्चलता। उनके उर मे—कुतूहल का समुद्र लहरा रहा था, पर सन्दल की गम्भीरता का तट इतना विशाल था कि उस की लहरे उसे छूकर बस लौट आती थी।

नाई लौट आया।

मुखियानी ने कहा है कि—"आये होंगे मेहमान! तमाम दिन की मरती-भरती ने अब ज़रा खाट से कमर छुई है और अब फिर चूल्हे मे जलूँ? मुखिया से कहना खुद आकर थेप ले टिक्कड़! मुझे मुखियागिरी के लिये लोगों की रज़ामन्दी नहीं लेनी है!"

नाई नम्बरदार के घर चला गया।

"नम्बरदारिन ने कहा है कि आधी रात गई अब तो गीदड़ भी सो गये! पर नम्बरदार के मेहमान अभी घूम ही रहे हैं! कह देना, आठ-दस रोटियाँ तो रक्खी है, पर साग नही है। मट्ठे से खावें तो खिला दे!"

दूसरे नम्बरदार के घर से भी नाई लौट आया।

"घर में सूत न कपास, जुलाहे से लट्ठम लट्ठा! आटा घर मे नहीं है और मेहमान बुला लिये बीस! दूध रक्खा है थोडा-सा। एक-एक गिलास पिला कर कह देना, चादर उढा दें अपने मेहमानों को!"

"नाई ! अब हमारे घर चला जा भाई ! कहना आठ-दस मेहमान आ गए है, पर रातें बहुत हो गई है, इस लिये चौधरी ने उन्हे खाने को नहीं टोका । पूछा है कि घर मे थोड़ा दूध तो नही रक्खा है ?"

नाई सन्दलसिंह के घर से लौट आया । उस के एक हाथ में थे दो उपले और दूसरे में तम्बाकू की पुड़िया ।

"चौधरिन ने कहा है कि उन्हे खाने को ज़रूर पूछे । जिस के घर मेहमान बिना खाये सोते है, भगवान उस से कभी खुश नही रहते । थोड़ी देर में सब को ले आवें, मैं जरा सी देर में खाना बना देती हूँ ।"

यह उपले दिये हैं और यह तम्बाकू और मुझ से कहा है कि जा तब तक चिलम भर दे !

सारा रहस्य अब तुरुप के खुले पत्ते की तरह सब के सामने था । सभी शरमाये-से सन्दल की तरफ़ देखने की कोशिश कर रहे थे, पर सन्दल अब भी वैसा ही गम्भीर था—सोई चञ्चल लहरों की नदी-सा शान्त उस का मुख-मण्डल, विजयी देश के लहराते झण्डे की तरह गौरव से दमक रहा था ।

सन्दलसिंह की पत्नी, हिन्दुस्तानी आतिथ्य-सत्कार और सेवा की मूर्ति । बहेड़े के आस-पास का निवासी, जो

भूले-भटके भी उधर से निकला, उसे उस देवी के प्रेम की प्रसादी मिली, पर उस का राज्य था घर मे। वह थी आत्मा, तत्त्व, ज्ञानियों के अनुभव की चीज़ और सन्दलसिंह था शरीर, दूर से दीखने वाला।

सन्दलसिंह और वहेड़ा लोगों की स्मृति मे घुल कर एक हो गए और यों ही धीरे-धीरे वहेड़ा 'सन्दलसिंह का वहेडा' हो गया।

आज न सन्दलसिंह है, न उस की पत्नी, पर पत्नी के सेवा-भाव ने उसे अमर कर दिया है और आज भी डाकखाने की मुहरों मे उस का नाम न जाने कितनी बार छपता है।

और सन्दलसिंह की पत्नी, हमारे समाज की 'बोलती महफिल मे एक खामोश महफिल' जिसे कोई नहीं जानता कि वह कौन थी, पर अनजाने भी जिस की नींव पर ही सन्दलसिंह की अमरता का यह महल खड़ा है।

ग़रीब का ईमान

१

"सूअर का बच्चा ! रोज हराम की खाना चाहता है। कभी नमक कम, कभी नमक ज्यादा। दूर हट बदमाश कहीं का !"

आशाराम हमारा पुराना रसोइया था और हम सब बहुओं के लिये उस की स्थिति परिवार के बुजुर्ग जैसी थी। इधर जब से बड़े लाला जी टाइफाइड से उठे थे, उन का स्वभाव बेहद चिड़चिड़ा हो गया था और ग़रीब की जोरू सब की भावज, उन के क्रोध का निशाना बनना पड़ता था—बेचारे आशाराम को।

आशाराम के भी कुछ इधर हाथ-पैर फूल गए थे। कभी नमक कम तो कभी नमक ज्यादा। रोज़ कुछ-न-कुछ गड़बड़, रोज़ दस-बीस गालियाँ !

उस दिन आशाराम ने मुझ से कहा—"बहूजी ! मुझे तो जैसे नज़र लग गई है, आज शाक तुम छौंक दो ?"

मुझे ख़ुद उस पर दया आ रही थी। मैंने टमाटर का शाक छौंक दिया और अपने कमरे में चली गई, पर आशाराम के ग्रह वाक़ई ख़राब थे। उस ने सोचा, मैंने सिर्फ़ छौंक लगाया है, अभी नमक डालना शेष है। बस, उस ने भी नमक डाल दिया और पूरियाँ उतारने लगा।

बड़े उत्साह से आज उस ने थाल लगाया। आज उसे बहुत दिन बाद लाला जी को प्रसन्न देखने का विश्वास था। ख़ुशी-ख़ुशी उस ने टेबिल पर थाल रक्खा, लाला जी ने एक टुकड़ा शाक के साथ मुँह मे दिया और पैर के एक झटके के साथ थाल दूर फेंक दिया। गालियों की बौछार से सारा कमरा गूञ्ज उठा—

"सूअर का बच्चा ! रोज हराम की खाना चाहता है। कभी नमक कम, कभी नमक ज़्यादा, दूर हट बदमाश कहीं का !"

आशाराम सन्न ! उस के जिस्म में काटो तो ख़ून नहीं। हे भगवान, आज भी वही बात। आज तो शाक बड़ी बहू ने छौंका था। क्या वह भी कुछ भूल गई ?

आशाराम ख़ून के अपराधी-सा चुपचाप अपनी कोठरी में चला आया। रसोई की ओर उस ने देखा तक नहीं। थोड़ी देर बाद, एक मैला-सा पर्चा, पेंसिल

से लिखा, लाला जी की मेज़ पर आ गया। यह आशाराम की विदाई का सूचना-पत्र था।

२

चार-पाँच रोज आशाराम कोठी पर नहीं आया, पर इस के बाद वह कभी-कभी आने लगा। वह आता, घर के चार काम कर जाता। लालाजी के पास बैठता, उन से चार बातें करता और चला जाता।

वह बेकार था, उसे दस नौकरियाँ मिल रही थीं। मैंने भी उस से बेकार न रहने को कहा, पर नौकरी के लिये उस का मन तैयार न था। नौकरी की बात सुन कर, कई बार मुझे ऐसा लगा कि उस के भीतर जैसे दुःख की आँधी उठ जाती है और अपनी असफलता उस के आगे आ खड़ी होती है। लाला जी चाहते थे कि आशाराम फिर से अपनी जगह काम करे, पर वह इस के लिये भी तैयार न था।

एक दिन ज़ोर से खाँस कर आशाराम शाम के समय मेरे कमरे में आकर खड़ा हो गया।

"क्या है मिस्सर जी ?"

"बहू जी ! मै आप का ही अन्न खा कर इतना बड़ा हुआ हूँ और अब भी आप की ही मदद से कुछ काम करना चाहता हूँ।"

वह ढाबा करना चाहता था और उसे ३००) की ज़रूरत थी। मैंने ३००) उसे दे दिये। वह ख़ुश-ख़ुश आशीर्वाद दे कर चला गया।

उस का ढाबा चल निकला और ६ महीने बाद ही वह ३००) ले कर मेरे पास आया। वह बहुत ख़ुश था। बातों-बातों मे मैंने कहा—"मिस्सर जी! अब तो तुम अपनी शादी कर लो, यों इकले कब तक रहोगे? चालीस साल से कम ही होगी तुम्हारी उम्र?"

आशाराम का चेहरा खिल गया, पर सकुचाते-से उस ने कहा—"कह तो सब रहे हैं। एक रिश्ता उठ भी रहा है, पर सोचता हूँ अब क्या शादी करूँगा बुढापे मे बहू जी! थोड़ी-सी रही है, यह भी यों ही कट जाएगी।"

"यों ही क्यों कट जाएगी। शादी करलो और आराम से रहो। लोग तो ६० साल की उम्र मे शादी रचाते है, तुम तो ३० के ही लगते हो!"

"बहूजी, शादीमे खर्चका भी तो सवाल है! बड़ी मुश्किल से ये ३००) जोड़े थे। अब एक फूटी कौड़ी भी पास नहीं है!"

उस के ३००) उस के आगे रख कर मैंने कहा—"तो मेरे रुपयों की तुम्हें इतनी फिक्र क्यों है? पहले तुम अपना घर खोलो, मेरे रुपयों की बाद मे देखी जाएगी। तुम्हे और कुछ चाहिए तो मुझ से ले जाना।"

आशाराम की शादी हो गई।

३

"बहू जी ! यह सन्दूकची अपने पास रख लो।"

"क्या है इस मे मिस्सर जी ?"

"मेरा जेवर है। मेरा मन कह रहा है कि मेरी जिन्दगी के दिन पूरे हो गये। पता नहीं, कब मिट्टी का डला-सा भुर जाऊँ ?

मै आप का कर्ज़दार हूँ, पर कोई लिखा पढ़ी नही है। घर वालों का क्या ? जरा-सी देर मे वे बेईमान हो जाये। बहू जी, मुझे ईश्वर के यहाँ भी जगह न मिलेगी !"

और डिब्बा उस ने मेरे पैरों के पास रख दिया।

मैने उसे समझाया—"अभी तुम्हारी उम्र ही क्या है। मरने का यह वहम तुम्हे कहाँ से लिपट गया ? अभी शादी की है, अपने घर मे आनन्द से रहो। ऐसे वहम मे नहीं पडा करते। जाओ, अपना डिब्बा ले जाओ और बहू को ज़ेवर पहनने दो। वह तुम्हारी बाते सुनेगी तो क्या सोचेगी अपने मन मे !"

पर वह न माना और डिब्बा मेरे पास छोड़ गया।

"बहू जी ! तुम ने कभी मेरी बात नहीं टाली। दया कर के यह डिब्बा अपने पास रख लो। मेरे साँस को कुछ हो गया और घर वाले मुकर गये तो मुझे ईश्वर के यहाँ भी जगह न मिलेगी।"

पता नहीं उसे क्या इलहाम हुआ था। आशाराम पन्द्रह दिन बाद ही हैज़े मे चल बसा। चार दिन उस की चर्चा रही और बात आगे-पीछे जा पड़ी। उस का डिब्बा ज्यों का त्यों मेरी अलमारी मे पड़ा रहा। मुझे उस की याद भी न रही।

हम कभी मरना नही चाहते और मर कर भी चाहते है, हमारी याद युग-युग तक दुनिया के दिलों मे ताज़ी बनी रहे, पर दूसरों की मृत्यु हमारी दृष्टि में इतनी साधारण घटना है कि हम उसे अपनी याद के खाते मे इतनी हल्की रोशनाई से लिखते है कि सन्ध्या के बाद प्रभात की नव किरणों का अरुण आलोक फूटते-न-फूटते वह सूख कर कहीं उड जाती है।

जीवन की यह कैसी विचित्र विडम्बना है?

४

उस दिन मेरे रेशमी कपडे सूख रहे थे। उन के साथ ही रतनू आशाराम का वह डिब्बा भी उठा लाया।

"यह क्या है?" लाला जी ने उसे देख कर पूछा और आशाराम की उस दिन की वह घटना मेरी आँखों मे घूम गई। संक्षेप से वह सब मैंने लाला जी को सुना दी।

उन्होंने वह डिब्बा खोला। उस मे लगभग ५००) का ज़ेवर था। स्नेह का रस उन की आँखों मे, बादलों के

उर का स्पन्दन-सा उमड कर वह चला। वे उठ कर अपने कमरे मे गये और लौट कर उन्होंने वह डिब्बा मुझे लौटा दिया। मैंने देखा, उस मे ५००) के नोट और रख दिये थे।

बोले—"आशाराम ग़रीब की ईमानदारी का एक सुन्दर नमूना था। तुम उस की स्मृति मे कोई ऐसा स्मारक बनवा दो जो उस की याद भी बनी रहे और दुनिया को सबक भी मिले।

बहुत सोच कर आशाराम की याद मे मैंने एक हाल बनवा दिया है जिस मे शहर भर के वे नौकर और मजदूर आराम करते हैं जिन के लिये स्थान का प्रबन्ध नहीं है।

एक पत्थर पर आशाराम का संस्मरण खुदा हुआ है, जिसे वे लोग पढ़ते है और ईमानदारी की प्रेरणा पाते हैं।

मैं जब कभी उस हाल के सामने से गुजरती हूँ तो आशाराम का वह चित्र मेरी आँखों मे घूम जाता है—"मैं आप का कर्जदार हूँ, पर कोई लिखा पढ़ी नहीं है। घर वालों का क्या? जरा-सी देर मे वे बेईमान हो जाएँ! बहू जी, मुझे ईश्वर के यहाँ भी जगह न मिलेगी!"

शिक्षा मानवता के विकास का चरम साधन है और मोह-ममता के अन्धकार मे डूबी आत्मा का प्रकाश स्तम्भ, पर शिक्षा के नाम पर उस ने कुछ अक्षर ही पढ़े थे और

संसार की परिभाषा के अनुसार उसे धर्मात्मा कहना भी एक उपहास होगा। फिर भी आशाराम एक ऐसा मनुष्य था कि उस पर कोटि-कोटि महाग्रन्थों का अध्ययन करने वाले हजारों शिक्षित और आरती एवं घण्टे की ध्वनि में झूम-झूम जाने वाले लाखों धर्मात्माओं का जीवन न्योछावर हो जाए।

"बहू जी, मुझे ईश्वर के यहाँ भी जगह न मिलेगी।" यह उस के सरल हृदय का कितना सुन्दर चित्र है?

धवल छत्र की छाया में

१

इङ्गलैण्ड की स्त्रियाँ चाहे नाज़ियो के बम्बार्डमेण्ट से बच जाये और टपाटप ओलों की वृष्टि मे खडे पके खेतों के बचाव का भी चाहे कोई वैज्ञानिक प्रबन्ध कर दे, पर हिन्दुस्तान की स्त्रियाँ पुरुषों की घूर से नही बच सकती ! कम-से-कम अभी बहुत दिनो तक ।

इस घूर का उपयोग क्या है ? एक ख़राब आदत और बस कुछ नही, पर इतनी विशाल और सस्कृति-सम्पन्न जाति मे एक व्यापक ख़राब आदत ! ख़राब जानने पर भी न छूटने वाली ख़राब आदत ! हाय रे राम !

हरेक आदत का एक मनोविज्ञान है और एक इतिहास और सच यह है कि उस मनोविज्ञान मे ही वह इतिहास छिपा है तो इस घूर का मनोविज्ञान क्या है ?

नारी स्वभावत: सुन्दर है, जब कि व्यवहारत: वह अनेक स्थलों में कुरूप भी है, पर पुरुप की भावुकता भरी कल्पना में नारी और सौन्दर्य का सम्बन्ध अविच्छेद्य है। जो नारी है, उसे सुन्दर होना ही चाहिए।

इस कल्पना और व्यवहार मे एक समन्वय है, नारी पुरुप के रात-दिन के सङ्घर्ष से परिपूर्ण जीवन मे मधुर सरसता का बहता स्रोत है और इस रूप में वह नित्य-सुन्दर है, पर द्रष्टा पुरुष उस के इस आध्यात्मिक रूप से बहक कर, दत्तात्रेय की मर्मवेधी भाषा में, एक चर्मकार—चर्म-विशेषज्ञ—के रूप से, जहाँ उस की केवल शारीरिक रूप में परख करता है, वहाँ यह समन्वय अस्थिर हो उठता है।

तो नारी सुन्दर है और जो सुन्दर है, वह दर्शनीय भी है। सुन्दर के दर्शन की भावना मे न कही पाप है, न अव्यवस्था। पुरुष के भीतर भी इस भावना का भण्डार है, पर हमारे इतिहास के किसी विगत खण्ड मे दर्शन की इस पवित्र भावना पर व्यवस्था की पाबन्दियाँ जड़ दी गई है। यह घूर इन पाबन्दियों के विरुद्ध एक स्वाभाविक प्रतिक्रिया है और क्रिया का सुधार ही प्रतिक्रिया के समन्वय की सर्वोत्तम विधि है।

मैंने चार अक्षर पढ़े हैं और सोसायटी में बैठी हूँ, इस लिये मैं यह सब समझती हूँ, तो जब लाला बलदेवदास

ने मेरी ओर बार-बार देखा तो मेरे लिये यह कोई ख़ास बात न थी।

लाला बलदेवदास कानपुर के पुराने रईस थे। कभी तो बेचारों के बाहर घोड़ागाड़ी खड़ी रहती थी और बैलों की जोड़ियाँ झूमा करती थीं, पर जमीदारी की आमदनी से जो धन उन की तिजोरी मे आ कर बैठ गया तो उन्हे बिड़ला के ख्वाब आने लगे।

एक चलता-सा आदमी उन्हे मिल गया। बम्बई मे एक दूकान खुल गई और बस दो ही साल मे सब चौपट! अब लाला जी एक दूकान करते थे और कुछ खेती। इज्जत के साथ रोटियाँ मिल रही थीं और १९३० के काँग्रेस आन्दोलन मे जेल जाकर उन्होंने फिर से शहर मे एक बात पैदा करली थी। अब सभी सभा-सोसायटियों मे वे कुछ-न-कुछ थे।

रामलीला कमेटी के वे चेयरमैन थे और वहाँ किसी मनचले मेम्बर ने यह प्रस्ताव पेश कर दिया था कि यहाँ सीताजी का प्रतिनिधित्व करने के लिये किसी नारी को भी स्थान दिया जाए। मेरे पति रामलीला कमेटी के सब से बड़े 'डोनर' थे, इस लिये मै ही सीता की सब से बडी प्रतिनिधि मानी गई।

जिस दिन पहली बार मै रामलीला कमेटी की मीटिङ्ग मे गई तो राम के सारे प्रतिनिधियों की आँखों मे एक चमक-सी आ गई।

बलदेवदास जी की उम्र साठ वर्ष के करीब थी। चेहरे पर झुर्रियाँ, दाँत बने हुए और सिर पर सफेद बालों की छोटी-छोटी लच्छियाँ ! झुक कर, हाथ जोड़ कर और दाँत निकाल कर बोले—"हे, हे, आपने बड़ी कृपा की जो हमारी प्रार्थना मंजूर फरमाई। आप् वहाँ क्यों बैठ रही हैं ? यहाँ पधारिये।"

मै उन के पास बैठ गई। वे सारी प्रोसीडिङ्ग मे राय सिर्फ मुझ से ही पूछते रहे और देखते भी मुझे ही रहे, जैसे मीटिङ्ग मे और कोई मामलात को समझता ही न था। सदस्यों को भी कई बार उन्होंने उपदेश दिया कि वे देवीजी की बात ध्यान से सुने और उनके अनुभव से लाभ उठावे।

जब मीटिङ्ग समाप्त हुई तो बड़े तपाक से उन्होंने मुझे धन्यवाद दिया—"हमारी सभा का काम इधर कुछ दिनों से ढीलेपन की दलदल मे फँस रहा था। अब हमे विश्वास हो गया है कि देवी जी के तेज से उस मे एक चमक आ जाएगी।"

मुझे खुद कार तक छोड़ने आये। मेरे रोकने पर भी कार का दरवाजा खोला और अत्यन्त सम्मान पूर्वक मुझे बिठा कर खुद दरवाजा बन्द किया और मुझे झुके से मोटर पर हाथ रख कर बोले—"बस, अब मै सभा के काम से बेफिक्र हो गया। ये लोग रोज़ नये-नये झगडे खड़े करते है और मै परेशान होता हूँ। मै भी क्या करूँ,

मुझे सभा के काम से ऐसा मोह हो गया है कि छुडाये नहीं छूटता। अब जो भी मसला आएगा, मै आप से पूछ लिया करूँगा।"

अपनी योग्यता के सम्बन्ध मे मुझे इतना बडा प्रमाण-पत्र पहले कभी न मिला था।

२

दूसरे दिन कोठी की घण्टी बजी और चपरासी ने अन्दर आकर कहा—"कोई लाला बलदेवदास जी खड़े है।"

वही हँसी, वही नम्रता और एक रजिस्टर बगल मे।

"हे, हे, देवी जी, कलक्टर साहब कहते है कि रामलीला का जलूस इस बार आठ बजे ही समाप्त हो जाए। मैं उन से मिलने जा रहा हूँ। सोचा आप की राय लेता चलूँ। बस आप के आने से तो मैं सभा के काम से कतई बेफिक्र हो गया।"

मै इस मामले को कतई न समझती थी, फिर भी 'हॉ-हूँ' करती रही, पर इस 'हूँ-हाँ' को ही लाला जी ने चलते समय कहा कि—"आप के गम्भीर परामर्श से मेरी सारी गुत्थियॉ सुलझ गईं।"

मेरा मन आज उन के प्रति प्यार-सी कोमलता से भर गया। लाला जी बहुत सीधे आदमी है। बेचारों को किसी का सहयोग नही मिलता। सभा के काम के लिये

इक्के मरते फिरते हैं। मुझे खेद हुआ कि मै इस लायक नहीं हूँ कि उन के काम मे ज़्यादा हाथ बटा सकूं। फिर भी मेरे मन मे आया कि इस वार की मीटिङ्ग में मेम्बरों को एक मीठी फटकार पिलाऊँगी और इन के त्याग की प्रसंशा करूँगी।

अब बलदेवदास जी तीसरे-चौथे दिन आते और किसी-न-किसी मसले पर बातें करते। जितनी देर बैठते, मुझे देखते रहते और किसी-न-किसी बात पर मेरी तारीफ करते रहते। यों ही कुछ दिन और बीत गये।

अब वे जब आते तो कुछ हड़बड़ाये-से। इतना और कि अब वे अपने बालों मे खिज़ाब लगाने लगे थे और अङ्गे की जगह बन्द कोट ने लेली थी। बालों मे ख़ुशबूदार तेल लगाते थे, आँखों मे सुरमा। इन सब से वह पूरे भँडेले-से लगते थे, पर शायद उन के दर्पण की सम्मति किसी से मिलती न थी। मेरी दृष्टि मे यह भी उन की सरलता का ही रूप था।

उस दिन वे आये तो बोले—"हे, हे, आप को देखे दो-चार दिन हो जाते है तो दिल मे एक हुड़क-सी उठने लगती है।"

उस समय मुझे अनुभव हुआ कि उन की पिण्डली और आवाज़ दोनों मे कँपकँपी थी और वे पानी-पानी हुए जा रहे थे।

३

उस दिन वे बहुत से काग़ज़ ले कर आये और घण्टा भर बातें करते रहे, जिन मे कोई तरतीब न थी। उन के कागजों मे तह किया, एक छोटा-सा पर्चा रक्खा था, जिसे वे बार-बार इधर-उधर कर रहे थे। वे शायद मुझसे कुछ कहना चाहते थे, पर कह न रहे थे। घबराये-से, जैसे दिल की धडकन का दौरा उन्हे हो रहा हो!

"लाला जी, आप की तबियत कैसी है? शर्बत बनवाऊँ आप के लिये?"

"नही, नही, आप क्यों तकलीफ करती है! मै तो बस अब यही चाहता हूँ कि अपने को पूरी तरह आप को सौंप दूँ। हे, हे, शर्बत की क्या जारूरत है। मै तो हमेशा आप का ही शर्बत पीता रहता हूँ!"

मैंने गौर से उनकी तरफ देखा कि भीतर तक उन्हे झाँक पाऊँ, पर उसी समय वे उठ गये। उन के जाने पर मैंने देखा, वह पर्चा वही पड़ा रह गया है। योंही उठा कर मैं पढने लगी।

"रानी! मैं बूढा हूँ पर मेरे भीतर जवानी का दिल है। तुम मेरे बुढापे को देख कर मेरा अदब करती हो, पर मै चाहता हूँ कि मेरा दिल देखकर एक बार मुझे प्यार करलो।

मै देखता हूँ, रोज तुम अपने जवान देवरो के साथ चुहल करती हो, पर मेरा अनुभव है कि जवान के दिल

में हज़ार उम्मीदें, हजार रङ्ग होते है। उस का प्यार दुनिया मे हजार जगह बटा रहता है, पर मेरा प्यार तो केवल तुम्हारे ही चरणों में न्योछावर है।

जवान आदमी को रिझाने के लिये, रिझा कर वस मे रखने के लिये, हज़ार तरकीबे करनी पड़ती है, पर मेरे लिये तो तुम्हारी एक चितवन ही काफी है। उसी मे मै सारी उम्र बँधा रहूँगा रानी!"

पर्चा मैंने दो-तीन बार पढ़ा और मैं ज़ोर से हँस पडी, पर तुरन्त ही मेरा मन गम्भीर हो गया।

"हूँ! बुड्ढा इतना रसिक है?"

शाम को मेरा त्याग-पत्र और वह पर्चा लाला बलदेवदास के पास पहुँच गया।

मन प्रश्नों की खान है। मेरे मन मे भी आज चारों ओर प्रश्न उभर रहे है। आकाश की दीपमाला की तरह कुछ चमचमाते, कुछ टिमटिमाते और कुछ बुझते-से।

मन की दुनिया भी निराली है। पिछले महीनों मे बीती घटनाएँ, स्मृतियों का बाना पहने आती-जाती रहती है। कभी मन क्रोध से भर जाता है, कभी हँसी से और कभी उपेक्षा से ऊब उठता है। प्रतिहिंसा भी अपनी झाँकी दे जाती है—क्यों न मैंने वह पर्चा रामलीला कमेटी की मीटिङ्ग मे पढ दिया? पर अन्त मे फिर हँसी आ जाती है और सब कुछ उसी में धुल और घुल जाता है।

तीन साल पहले की बात

१

यह कोई कहानी नहीं है, एक घटना है। वैसे तो हर कहानी एक घटना है और हर घटना एक कहानी है, पर यह वाकई एक घटना है।

इसे समझने के लिये यह जरूरी है कि हम लुधियाने के लाला भोलाराम के आँगन का स्वरूप समझ ले। पहाड़ मुहानी, पुराने ढङ्ग की इकमंजिला हवेली, जिस मे सामने की तरफ एक बैठक, बीच मे दहलीज और बराबरी मे बहलखाना, भीतर तीनों तरफ कमरे और छत पर दो बरसातियाँ। यह कुल मकान है।

बैठक के ठीक सामने थी रसोई। बैठक मे आये-गये मेहमानों को रसोई मे काम करती स्त्रियाँ दिखाई देती थीं, इस लिये लाला भोलाराम ने बैठक के दरवाजे के ठीक सामने चौक मे एक ओटा बनवा दिया था।

ओटा, एक देहाती टेकनिक, जिस का अर्थ है ओट के लिये बनी एक छोटी-सी दीवार। ओटे के बीच मे एक छोटा-सा ताक, जिस के एक कोने में, जाने कब का श्री गणेश-वाहन का बिल।

"मुन्नू! ले दौड़ कर दो पैसे की दही ले आना। बाबू कामताप्रसाद भी खाना खायेंगे। जल्दी आना!"

तीन दिन झकाझक बारिश पड़ने के बाद आज दिन खुला था। चिड़ियें अपने घोंसलों से लम्बे विश्राम के बाद, बाहर आकर चहचहा रही थी। सूर्यदेवता अपनी तीन दिन की ग़ैरहाजिरी के लिये शर्मीले से चारों ओर झाँक रहे थे।

लाला भोलाराम को कचहरी जाने की जल्दी थी। मुन्नू को देने के लिये उन्होंने ओटे के ताक मे से दो पैसे उठाये!

कच! दो नश्तर से उन की अँगुली मे बिंध गये, ख़ून टपकने लगा। चूहे का दाँत किस नश्तर से कम है? एड़ियें उठा कर लाला भोलाराम ने देखा, ताक मे कोई न था!

"भाग गया शैतान! पर भाग कर जाएगा कहाँ?"

गुस्से से लाला भोलाराम का दिमाग़ झल्ला गया। पास ही एक लोहे की मूठ-सी पड़ी थी। उसे उन्होंने उस छेद में ठोक दिया और बोले—"लो बच्चू! अब हमेशा के लिये यहाँ विश्राम करो। ओटे के चारों ओर सीमेण्ट लिपा है। दो-चार दिन भीतर फुदको और फिर हमेशा के लिये सो जाना!"

लाला भोलाराम ने अंगुली पर गीले कपड़े की पट्टी लपेटी, भोजन किया और कचहरी चले गये। शाम को कचहरी से लौट कर उन्होंने फिर उस मूठ को देखा और एक बार हाथ से नीचे को दबा दिया। अब वे निश्चिन्त थे कि उन्होंने अपने दुश्मन से पूरा बदला ले लिया है।

दूसरे दिन शाम को जब वे कचहरी से लौटे तो बहुत देर तक ताक के पास खड़े कान लगाये भीतर की आवाज़ सुनने का प्रयत्न करते रहे, पर जब कुछ हलचल सुनाई न दी तो अभिमान से अकड़ कर बोले—"सो गये बचूराम, या कुछ फुदक बाकी है ?"

उन की इस कठोरता से श्रीमती जी की दयालुता मे उफ़ान आ गया। बोलीं—"क्यों उस बेचारे के पीछे पड़े हो ? निकाल दो यह मूठ !"

जरा और भी अकड़ कर वे बोले—"और मेरी खून की इन बूंदों की कीमत कौन अदा करेगा, तुम ?" और वे जोर से हँस पडे।

२

इस के तीन वर्ष बाद !

कचहरी की आमदनी से लाला भोलाराम की हवेली अब दुमंजिला हो गई थी और रसोई का कमरा अब

दूसरी मंज़िल पर चला गया था। अपनी आराम कुर्सी पर बैठे लाला साहब मिस्त्री को कुछ हिदायतें दे रहे थे।

श्रीमती जी ने पास आकर कहा—"यह ओटा भी गिरवा दो। अब क्या ज़रूरत है इस की?"

"भूलन! गिरा दे इसे। बेकार भूत-सा खड़ा है कम्बख्त!" भूलन अपनी बसूली लिये आ डटा और एक-एक ईंट उतारने लगा।

"ओह-हो! बेचारा घुट कर मर गया!"

भूलन की निरन्तर चलती बसूली बन्द हो गई और वह भौंचक-सा गिरते ओटे को देखता रह गया।

लाला भोलाराम ने यह सुना और तीन साल पहले की एक याद उन के दिमाग से आकर टकरा गई। अपनी आँखों के आगे फैले अख़बार को समेट कर उन्होंने कहा—"क्या है भूलन! वह चूहा होगा बदमाश?"

"नहीं, साँप है लाला जी! किसी ने बेचारे के बिल में लोहे की मूठ ठोक दी और कहीं निकलने को जगह न थी, बेचारा घुट कर मर गया!"

"अबे, साँप या चूहा?"

भराई-सी आवाज़ में लाला भोलाराम ने पूछा। जैसे छूटने की उम्मीद में बैठा निर्दोष कैदी फाँसी की सजा सुन ले और उसे अपने कानों पर विश्वास न हो।

"हाँ लाला जी ! साँप था। किसी कम्बख्त ने बेचारे के बिल मे लोहे की मूठ ठोक दी और बेचारा घुट कर मर गया।"

सकपकाये-से लाला भोलाराम अपनी कुर्सी पर से उठे और उन्होंने ग़ौर से ओटे पर एक नज़र डाली। डेढ गज़ लम्बे साँप की एक-एक हड्डी ज्यो की त्यों जमी रक्खी थी।

"ओह ! इस साँप ने काटा था तब और मै समझता रहा चूहा !"

तीन साल पहले की वह बात, एक ताज़ी घटना की तरह उन की आँखो मे घूम गई। कैसे उन की अँगुली मे दो नश्तर से चुभे, कैसे उन के दिमाग़ मे एक चूहा आया और कैसे ख़ुशी-ख़ुशी उन्होंने उस से यह बदला लिया, पर ओह, वह तो साँप था !

उन्होंने गौर से अपनी उस अँगुली की तरफ देखा। उन्हे लगा कि अभी हाल उन्हे साँप ने काट लिया है और उस का जहर उन के तमाम शरीर मे फैल रहा है।

जोर से उन्होंने अपनी अंगुली झटकी और बाये हाथ से अपनी धोती ऊपर को उठाये, वे उछल पडे। एक बार फिर घूर कर उन्होंने उस सर्प-पिञ्जर की ओर देखा और एक बार अपनी उस अँगुली की ओर !

उन के पैरों के नीचे की जमीन जैसे घूम चली और वे धम्म से अपनी कुर्सी पर आ गिरे। उन की आँखे खुली थीं, हाथ फैले थे और साँस बन्द।

भूलन अभी कहे जा रहा था—"लाला जी ! किसी कम्बख्त ने कील ठोक दी। कहीं मुड़ने की जगह न थी, बस बेचारा घुट कर मर गया !"

जंगू की बात

१

"बुला कर ला, उस नालायक को !"

मेरा भङ्गी जगू अक्सर अपनी बहू को पीटता है। घूसा, थप्पड, लात, लाठी, सुना है, सब का वह आचार्य है। वह गरीब भङ्गी है, मेरा आधीन है, इस लिये मुझे हक है कि उसे इस के लिये डाटूं, चाहूँ तो सजा भी दूँ, नहीं तो बडे-बड़े समाज-सुधारक विद्वान और देशोद्धारक इस आचार्यता मे जंगू के प्रतिद्वन्दी है।

एक रुई भरी बोरी-सी नारी और एक धुनिया-सा पुरुप। नारी—गति-हीन, प्रतिपाद-हीन, प्रतिशोध-हीन ! पुरुप—साकार आक्रमण, साकार स्फुरणा और नारी की नस-नाडियों के सम्पूर्ण ज्ञान का अवतार ! एक बाहर से भीतर तक मूक और दूसरा भीतर से बाहर तक

गातिमय ! हमारे समाज का यह साधारण दृश्य है। इसे देख कर किसी का दिल नही फटता, किसी की आँखे नहीं पसीजती।

गान्धी जी कहते है—'अहिंसा शत्रु का भी हृदय परिवर्तन करेगी।' भारत की नारी जैसे इस परीक्षण मे असफल हो गई। धुनाई के बाद रुई के भी रेशे घण्टों फुदकते-से रहते हैं, पर भारत की नारी अपनी धुनाई के कुछ क्षणों बाद, नस-नस मे कराहती पीड़ा को भीतर तक भूली हँसती है और उसी पुरुष के भोजन, विश्राम और मनोरञ्जन की चिन्ता करती है। उस का जीवन जैसे अहिंसा के विरुद्ध हिंसा की विजय-घोषणा है।

उस दिन जब फिर बहू के पीटने की बात सुधा ने मुझ से कही तो सब कुछ जान कर भी मै झुंझला उठी—"बुला कर ला, उस नालायक को!" वह आ कर खड़ा हो गया।

"क्यों रे, तू रोज़ उसे मारता क्यों है? तू आदमी है या भेड़िया? उठा अपना सामान और मेरा कार्टर ख़ाली कर, पाजी कही का!"

"बहू जी, वह बड़ी सुअर है। रोज़ मेरे बाप को तङ्ग करती है। दुखी हो कर मेरा हाथ उठता है!"

मेरी आधी कोठी के किरायेदार मि० अरोड़ा सामने लॉन मे बैठे ख़त लिख रहे थे। आप उदार है, दानी है,